सुज्ञान सागरजी महाराज पू० क्षुल्लिका १०५ सयम मतीजी क्षुल्लिका १०५ रतन मतीजी आदि त्यागी गण है । जो सभी परम तपस्वी, अध्ययनशील वीतराग वृत्ति के धारी हैं। हम प० पू० आचार्य कल्प मुनि संभव सागरजी महाराज एवं पूर्ण मुनि सघ के परम आभारी हैं कि जिन्होंने हम पर पूर्ण अनुग्रह कर यहां चातुर्मास किया, और धर्म की महान प्रभावना कर हमे लाभान्वित किया। हमारी हार्दिक भावना है कि हमे इसी प्रकार सदैव सत समागम मिलता रहे।

चरण कमल चचरीक

सकल दि० जैन समाज

निवाई (टोंक राज०)

तात्कालिक चमत्कारपूर्ण मूर्ति
भगवान पार्श्वनाथ

(श्री दिगम्बर जैन बड़ा मंदिर निवाई)

प्राक्कथन

आचार्य कल्प स्थविर श्री श्री १०८ श्री सम्भव सागर मुनिराज विश्व धर्म ग्रन्थ का आद्योपान्त अवलोकन किया। महा विद्वान पूज्य मुनिराज ने जिस ढग से इस ग्रन्थ का निर्माण किया है। उससे आपके गहन अध्ययन एवं गंभीर ज्ञान का पूर्ण परिचय मिलता है आपने अपने इस ग्रन्थ में विविध युक्तियों तर्कों एवं शास्त्रीय प्रमाणों से यह प्रमाणित कर दिया है "कि परस्पर विवाद मानना सर्व धर्म शास्त्राणां, अहिंसा परमो धर्म इत्यत्र सर्वेषानेक मत्यं" अर्थात धर्मो मे परस्पर अनेक सिद्धान्तों और मान्यताओं के भेद होते हुये भी अहिंसा ही परम धर्म है इस विषय में सभी एक मत हैं। और पूज्य मुनिराज ने इस सिद्धान्त को सर्व सम्मत मानने मे, सभी धर्मो के माननीय ग्रंथों जैसे: वेद, स्मृतियों उपनिषदों व पुराणों ग्रंथ साहव कुरान वाइविल गीता तथा महा भारतादि अनेक ग्रन्थों के उद्धरण देकर पूर्ण सफलता प्राप्त की है। अहिंसा धर्म के घातक मद्य मांस मधु और मैथुन, कद मूल भक्षण अनछने पानी का पीना तथा रात्रि भोजन करना वलिदान करना आदि विषयों पर भी गभीर प्रहार किया है। आपने अकाट्य युक्तियां व तर्कों से तो इनका निषेध किया ही है। साथ ही सभी धर्मों के मान्य ग्रन्थों के प्रमाण तथा मान्य निष्पक्ष विद्वानों के मन्तव्य देकर इन सबको उपयोग मे लाने का निषेध दर्शाया है। यह भी सिद्ध किया है कि आधुनिक विज्ञान भी यह मानता है कि इन चीजों को भक्षण करने से निरंतर स्वास्थ्य की गिरावट होती है तथा ये सव चीजें अनेक कु साध्य असाध्य, रोगों को पैदा करती है। एवं मानसिक भावना पर भी कुप्रभाव डालती है। जिससे मनुष्यों की वुद्धि विकृति हो जाती है। और वे सद्भावना उदारता दयालुता पर दु:ख कातरता आदि देवी गुणों से वचित हो जाते हैं। आपने अनेक उदाहरण देकर यह भी सिद्ध कर दिया है कि विश्व में जितने भी महान् व्यक्ति विद्वान्, वैज्ञानिक एव धर्मनेता, आविष्कारक तथा सुप्रसिद्ध लेखक हुये हैं। वे सभी निरामिष आहारी और शाकाहारी ही हुये हैं।

इस युग के प्रख्यात दार्शनिक टालस्टॉय, डा० जैकोबी, जार्ज बर्नाडशा, विश्व कवि टैगोर, कबीर, राष्ट्र पिता महात्मा गाधी, महात्मा बर्मन, आदि सभी पूर्ण शाकाहारी थे। इसी से वे महान कवि व विचारक बने थे। इस समय विदेशो मे अनेक व्यक्ति शाकाहारी बन गये हैं। ईरान देश मे शाकाहार प्रचारक सस्थाएं स्थापित हो चुकी हैं। इससे अहिंसा विश्वधर्म का सम्मान ले चुकी हैं। पूज्य मुनिराज का यह ग्रन्थ विश्व के प्रत्येक प्राणी के लिये सार्वदेशिक कल्याणकारी साबित होगा। पूज्य मुनिराज परमशान्त, सौम्य एव वीतराग वृत्ति वाले, सतत, ज्ञान, ध्यान, और अध्ययन मे रत रहते हैं परम तपस्वी हैं। पथो के व्यामोह से विरक्त आर्ष मार्गीय, शास्त्रीय मार्ग के प्रतिपादक हैं समाज आपके इस महान् उपकार के प्रति चिर ऋणी रहेगा। मैं आपके उपदेशामृत से सदैव लाभान्वित बने रहने की आकाक्षा करते हुये आपके चिरायु होने की कामना करता हूँ। और आपके पावन चरणो मे विनयांजलि समर्पित करता हू।

निवाई जैन समाज की धार्मिकता सुप्रसिद्ध है। पूर्व के कई चातुर्मासों की तरह इस वर्ष भी पूज्य मुनिसघ का चातुर्मास कराने मे जिस उत्साह, श्रद्धा, भक्ति, और लगन का परिचय सम्पूर्ण जैन समाज ने दिया है। वह अनुकरणीय है इसकी सुव्यवस्था करने सार्वजनिक स्थानों पर प्रवचन कराने हेतु प्रबन्ध करने मे केशलु चन, पूजन, कीर्तन अखड पाठ करने और कराने मे तथा इस ग्रन्थ के लेखन प्रूफ सशोधन, प्रकाशन मे आहार दान के उपलक्ष मे आर्थिक सहयोग देकर जिन्होने विशेष योगदान किया हम उन्हे भी धन्यवाद अर्पण करते हैं तथा सम्पूर्ण जैन समाज निवाई की धार्मिक प्रवृत्ति की सराहना करते हैं।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि जो भी इस ग्रन्थ को पढ़ेगा, वह निश्चित ही धर्म का मर्म समझेगा। और अहिंसा धर्म को अपनाकर आत्म कल्याण करने मे अग्रणी हो जायगा। धन्यवाद।

मुनिचरण सरोरुह चचरीक

प. राजकुमार शास्त्री (निवाई)

श्री १०८ आचार्य कल्प सम्भव सागर जी महाराज

चातुर्मास–निवाई सं० २०३३

अनुक्रमणिका :

छः द्रव्यों का समूह विश्व

अनादि निधन इस जगत का स्वरूप भगवान ने पुरुषाकार रूप वताया है, जैसे कि पुरुष पैर फैलाकर, कमर पर हाथ रख कर खडा हुआ है, उसके सदृश जगत की वनावट है, यह जगत १४ राजू ऊंचा, ७ राजू चौडा है और ३४३ राजू क्षेत्र फल है इस जगत मे छ द्रव्य देखने मे आते हैं उसे लोक कहते हैं। इसमे प्रत्येक द्रव्य परिणमन करता है, इसे संसार भी कहते हैं। इस लोक मे छः द्रव्य हैं उनके नाम जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश, काल। इसमे जीव चेतन है वाकी सव अचेतन हैं,

जीवद्रव्य कर्म के सयोग से मूर्तिक माना जाता है, और शुद्ध चैतन्य स्वभाव की अपेक्षा से अमूर्तिक और धर्म अधर्म, आकाश काल ये द्रव्य भी अमूर्तिक है, किन्तु पुद्गल द्रव्य अमूर्तिक नही हैं यह पुद्गल स्पर्श, रस गन्ध वर्ण वाला होने से मूर्तिक हैं। इन छह द्रव्यो का कार्य इस प्रकार है। जीव द्रव्य का काम देखना और जानना, पुद्गल द्रव्य का काम वनना और गलना, धर्म द्रव्य का काम जीव और पुद्गल द्रव्य को चलने मे सहायक होना, अधर्म द्रव्य का काम ठहरने मे सहायता करना, आकाश द्रव्य का काम अवकाश देने का है। काल द्रव्य का काम परिवर्तन करना हैं। छ द्रव्यों का समूह विश्व है। जहाँ तक द्रव्यो का सद्भाव है, वहाँ तक लोकाकाश की सज्ञा है। जहाँ द्रव्य का अभाव है, उसको अलोकाकाश कहते हैं जीवादि द्रव्य लोकाकाश मे ही पाये जाते हैं। एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य के साथ निमित्त नैमित्तिक सम्वन्ध हैं, प्रत्येक द्रव्य को परस्पर उपकरण माना हैं, जैसे

तीन लोक
की
रचना
अ लो का का श
अ लो का का श
मध्य लोक
एक राजू
पांच राजू
निगोद
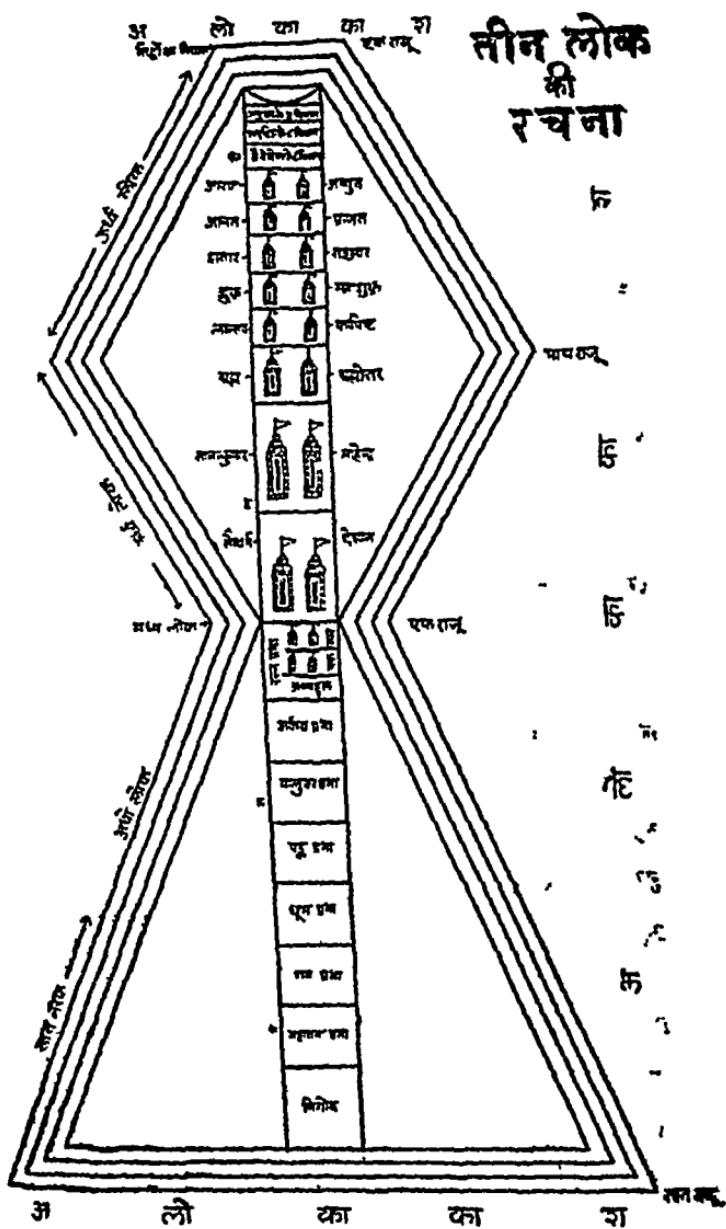
एक मनुष्य भोजन करने के लिये बैठा है वह जीव के रागभाव के वशात् शरीर की स्थिति के लिये भोजन (अन्न) को ग्रहण करता है। उस भोजन को पेट मे जाने मे धर्म द्रव्य का उपकार हुआ, उस अन्न को ठहरने मे अधर्म द्रव्य का उपकार हुआ, उस अन्न को अवकाश देने मे आकाश द्रव्य का उपकार हुआ, और वह अन्न के परिवर्तन रुप, काल द्रव्य का उपकार है, इस प्रकार छ द्रव्य का कार्य हर समय होता है, जिस द्रव्य का जो स्वभाव है वही उसका धर्म है। जिस द्रव्य के अन्दर जो गुण है, व स्वभाव है। हर द्रव्य का धर्म अलगर है। जैसे पानी का शीतलता धर्म है, अग्नि का जलाना धर्म है, वायु का वहना धर्म है, आत्मा का चैतन्य धर्म है. आचार्यो ने चारित्र को भी धर्म कहा है। और जिससे अभ्युदय और नि श्रेयस (मुक्ति) की प्राप्ति हो उसे भी धर्म कहते है। उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम शौच, उत्तम सत्य, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिञ्चन, उत्तम व्रह्मचर्य भी धर्म है। रत्नत्रय भी धर्म है। इस प्रकार धर्म शब्द के अनेक अर्थ वताये गये हैं। इसमे स्वभाव रुप-धर्म तो सभी पदार्थो मे पाया जाता है। किन्तु आचार रुप धर्म केवल चेतन आत्मा मे ही पाया जाता है। इसलिये धर्म का सवन्ध आत्मा से कहा जाता है, प्रत्येक तत्वदर्शी धर्म प्रवर्तक ने केवल आचार रुप धर्म का ही उपदेश नही किया अपितु वस्तु स्वभाव रुप धर्म का भी उपदेश दिया है। जिसे दर्शन कहा जाता है इसी से प्रत्येक पदार्थ अपना अस्तित्व रखता है। दर्शन मे आत्मा क्या है ? परलोक क्या है? विश्व क्या है ? ईश्वर क्या है ? आदि समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न किया जाता है, और धर्म के द्वारा प्रत्येक आत्मा को परमात्मा वनाने का मार्ग वतलाया जाता है, प्रकारान्तर मे धर्म के दो भेद किये जाते हैं, एक साध्य रुप धर्म है, दूसरा साधन रुप धर्म। परमात्मत्व

शुद्धात्मा साध्य रुप धर्म है, और आचार विचार या चारित्र साधन रुप धर्म है, क्योकि आचार या चारित्र के द्वारा ही आत्मा परमात्मा बनता है।

प्रत्येक धर्म के दो अग होते है, विचार और आचार, जैनधर्म के विचारो का मूल है स्याद्वाद, और आचार का मूल है अहिसा, इस जीव के सुविचार के अनुसार ही सदाचार होगा। जो विषयानुरागी है, उसके कुविचार के कारण ही वह दुराचारी होता है। जो धर्मानुरागी है उसके सुविचार के कारण क्रमश सामायिकादि चारित्र को प्राप्त होते हुए अन्त मे यथाख्यात चारित्र प्राप्त कर परमात्मा बनता है। इसलिये यहाँ विचार जो है ये ज्ञान से सम्बन्धित है। यदि ज्ञान मिथ्या रुप है तो अनेक भेद वाला इस विश्व धर्म के स्वरुप को न जानने से वास्तविक अहिसा धर्मी नही बन सकता। जो सम्यग्ज्ञानी है वह हेयोपादेय, सुविचार से युक्त विवेकी ही विश्व धर्म के मर्म को जानकर द्रव्य हिसा एव भाव हिसा इन दोनों प्रकार की हिसा से पार होकर सच्चा अहिसा धर्मी बन सकता है, यह धर्म सम्यग्दर्शन के बिना इन संसारी श्रावक एव मुनियों को नही होता है आत्मानुभूति से सम्यक्दर्शन, ज्ञान, चारित्र एक साथ प्रकट होता है। जहाँ सम्यक्दर्शन होगा, वहाँ सम्यक्ज्ञान होता है, जहाँ सम्यक्दर्शन, ज्ञान होता है वहाँ सम्यक चारित्र भी होता है। इनमे अविनाभावी सम्बन्ध है, इन्हे अन्य आचार्यों के मत से सच्ची भक्ति (श्रद्धा) सच्चा ज्ञान, सच्चा वैराग्य माना गया है। ये तीनो आत्मा के गुण हैं। ये अहिसा धर्मी को प्राप्त होता है, अब इसका स्वरुप बताते हैं कि- "धार्यते अनेन इति धर्म"— जिसके द्वारा धारण किया जाय वह धर्म है। इस के विषय मे एक फिलासिफर कहते हैं कि--

Religion is the highest-bliss, Non injuring self restra-

int and penance are the paths leading to it अर्थात् धर्म शास्वत सुख देने वाला है। इस धर्म की प्राप्ति का मार्ग अहिंसा आत्म संयम और तप है। अब आगे विश्व धर्म का स्वरुप बताते हैं।

विश्व धर्म का स्वरुप:—

छ द्रव्यो के समूह इस विश्व मे एक जीव ही ऐसा द्रव्य है, जो ससार मे अनेक अद्भुत कार्य कलापो को करके अन्त मे अपने शुद्ध आत्मा मे स्थिर रहने की शक्ति से युक्त है। वह शक्ति प्रकट होने मे अहिंसा धर्म निमित्त कारण है इस अहिंसा के दो भेद हैं, एक द्रव्य अहिंसा दूसरा भाव अहिंसा, इनका तात्पर्य यहाँ विशद् रुप मे वर्णन करते हैं पुरुषार्थ सिद्धयुपाय मे आचार्य अमृत चन्द्र सूरि कहते हैं कि-

अप्रादुर्भाव खलु रागादिनां भवत्यहिंसेति ।
तेषामेवोत्पत्तिर्हिंसेति जिनागमस्य सक्षेप ।। ४४ ।।

जीव के अपने शुद्धोपयोग रुप प्राणो का घात, रागादिक अर्थात् (राग, द्वेष मोह, काम, क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, भय, शोक, जुगुप्सा, प्रमाद) भावों से होता है। इसलिये इन रागादि भावो का अभाव ही भाव अहिंसा है। रागादिक समस्त विभाव हिंसा के ही पर्याय है। इन विभाव भावो की आत्मा मे उत्पत्ति होने का नाम ही भाव हिंसा है। रागादिक विभाव भावो का अभाव अहिंसा कहलाता है। इसलिये जिस प्रकार भी बने और जितना भी बने रागादिक विभाव भावो का नाश करना ही धर्म है। जहाँ भाव अहिंसा होती है वहाँ द्रव्य अहिंसा नियम से होती है। और जहाँ भाव हिंसा होती है, वहाँ द्रव्य हिंसा होती है। यहाँ आत्मा मे कर्मजन्य रागादिभाव के निमित्त से स्वपर प्राणो का विनाश करना ही द्रव्य हिंसा है। इसके

दो भेद हैं। (१) स्वद्रव्य हिंसा (२) परद्रव्य हिंसा। भाव हिंसा के भी दो भेद हैं (१) स्वभाव हिंसा (२) परभाव हिंसा। इस विषय मे आचार्य अमृत चन्द्र स्वामी कहते हे कि--

यत्खलु कषाययोगात्प्राणानां द्रव्यभावरूपाणाम् ।

व्यपरोपणस्य करणं सुनिश्चिता भवति सा हिंसा ।।

निश्चय से कषाय रुप परिणमन से, मन वचन, काय के योगो द्वारा अपने तथा पर के, भाव और द्रव्य रुप, दो प्रकार के प्राणो का घात करना हिंसा कहलाता है। जब किसी पुरुष के मन मे या वचन मे, या काय मे, क्रोधादिक कषाय प्रगट होते हैं तो उसके अपने शुद्धोपयोग रुप भावप्राणो का घात तो पहले ही हो जाता है। यह हिंसा अपने भाव प्राणो के घात से हुई। यह पहली हिंसा है। अन्य जीव की हिंसा होवे या न भी होवे। बाद मे यदि कषाय की तीव्रता से दीर्घ स्वासादिक से अपने हाथ पांव आदि से वह अपने अगो को पीडा उप जाता है या अपघात द्वारा अपने प्राणों का घात कर डालता है, तो उसके अपने द्रव्य प्राणो के घात होने से, उसकी द्रव्य हिंसा होती है। यह दूसरी हिंसा है। फिर यदि कषाय के वशीभूत होकर वह दूसरे किसी जीव से मर्म भेदी खोटे वचन कहता है या उसकी हंसी उडाता है, या कोई और कार्य करता है कि जिससे उस दूसरे का अन्तरङ्ग पीडित होकर कषाय रुप परिणमन हो जाता है तो उस दूसरे के भाव प्राणो का घात होता है, यह तीसरी हिंसा है। और यदि कषाय और प्रमाद के वश होकर वह उस दूसरे जीव के शरीर को कष्ट पहुचाता है या उसके अग आदि छेद कर उसका प्राणान्त कर देता है, तो दूसरे के द्रव्य प्राणो का घात होता है। यह चौथी हिंसा है इस तरह हिंसा के चार भेद हुये हैं द्रव्य हिंसा से

प्रकृति प्रदेश रूप बंध होता है। आगे विशेष रूप में हिंसा अहिंसा के विषय मे वर्णन करते हैं।

युक्ताचरणस्य सतो रागाद्यावेशमन्तरेणापि।
नहि भवति जातु हिंसा प्राणव्यपरोपणादेव ।४५॥

यहां कोई कहे कि हिंसा का लक्षण पर जीव के प्राणो को पीड़ा पहुंचाना मात्र ही है तव—

उत्तर यह है कि इस लक्षण मे "अतिव्याप्ति" और "अ-व्याप्ति" दोनो दूषण आते हैं, जैसाकि आगे वर्णन करते हैं। यदि कोई महा पुरुष ध्यान मे बैठा हुआ है अथवा सावधानी पूर्वक अप्रमादी होकर गमन आदि क्रियाओ को कर रहा है, कदाचित् उसके शरीर सम्बन्ध से किसी जीव के प्राणों को पीडा पहुंच जाय, तो भी उसको हिंसा का दोष नहीं लगता है, क्योकि उसके परिणामो मे कषाय भाव नहीं हैं उसके परिणामो मे तो शांत भाव या दया भाव है, हिंसक भाव नहीं हैं। यहां जीव के प्राणो को पीड़ा पहुंचते हुये भी हिंसा नहीं कहलाई। इस प्रकार प्राणो को पीडा देना मात्र ही यदि हिंसा का लक्षण कहा जावे तो उसमे अति दूषण आता है।

व्युत्थानावस्थाया रागादीना वश प्रवृत्तायाम्।
म्रियता जीवो मा वा धावत्यग्रे ध्रुव हिंसा ॥ ४६ ॥

यदि कोई प्रमादी जीव कषायो के वशीभूत होकर गमनादि क्रिया यत्न पूर्वक नहीं करता है, और क्रोधादिक भाव रुप परि-णमन करता है तो उस हालत मे जीव मरे या न मरे, वह तो

कषाय भाव के कारण अवश्य ही हिंसा के दोष का भागी बन जाता है। यहाँ पर जीव के प्राणो को पीडा न होते हुए भी प्रमाद के सद्भाव से ही हिंसा हुई। इस प्रकार यदि "प्राणों को पीडा देना मात्र ही "हिंसा का लक्षण कहा जावे तो अव्याप्ति दूषण आता है।

फिर यहाँ कोई प्रश्न करे कि "हिंसा" शब्द का अर्थ घात करना है। पर जीव के प्राणो का घात किये बिना हिंसा कैसे होगी। उत्तर हिंसा शब्द का अर्थ तो घात करना ही है परन्तु घात दो प्रकार का होता है। एक आत्म घात और दूसरा पर घात। जिस समय आत्मा कषाय भाव रुप परिणमन करता है तो उसी समय आत्मघात हो जाता है। बाद मे अन्य जीव का यदि आयु कर्म पूरा हो गया हो या उसके पाप का उदय आ गया हो तो उसका भी घात हो जाता है। अन्यथा यदि उसका आयु कम पूरा न हुआ हो या उसके पाप कर्म का उदय ही न आया हो तो उसका कौन क्या कर सकता है? उसका घात तो उसके आधीन है। इस (हिंसक) को तो इसके भाव कषाय रुप होते ही हिंसा का दोष लग गया।

हिंसायामविरमणं हिंसा परिणमनमपि भवति हिंसा।
तस्मात्प्रमत्तयोगे प्राणव्यपरोपणं नित्यम्॥ ४७॥

पर जीव के घात रुप हिंसा दो प्रकार की होती है एक अविरमण रुप, दूसरी परिणमन रुप, अविरमण रुप हिंसा उसे कहते हैं, जो पर जीव के घात मे प्रवृत्ति न करते हुए भी हिंसा त्याग प्रतिज्ञा बिना हुआ करती है। जिस पुरुष को हिंसा का त्याग नहीं, और वह किसी समय हिंसा मे प्रवृत्ति भी नही करता परंतु

उसके अन्तरग मे हिसा करने का भाव मौजूद है, इस लिये वह अविरमण रूप हिसा का भागी होता है। जैसे किसी ने हरितकाय (सब्जी) का त्याग नहीं किया और वह किसी समय सब्जी खा भी नहीं रहा है, परन्तु उसके अन्तरग मे उस हरित काय की हिसा करने का अस्तित्व है। इसलिये वह अविरमण रूप हिसा का भागी बनता है। परिणमन रूप हिसा उसे कहते हैं जो जीव के स्वपर जीव के घात मे मन, वचन, काय से प्रवृत्त होने पर होती है। इन दोनो प्रकार की हिसाओ मे प्रमाद सहित योग का अस्तित्व पाया जाता है। प्रमाद योग मे स्व व पर जीव की अपेक्षा प्राण घात का सद्भाव पाया जाता है। और इसका अभाव तब ही हो सकता है जबकि क्रोधादि भाव हिसा का त्याग कर प्रमाद रुप परिणमन न करे। जब तक प्रमाद पाया जाता है, तब तक हिसा का अभाव किसी प्रकार नहीं हो सकता।
प्रश्न—यदि आत्मा के प्रमाद रुप परिणामो से ही हिसा होती है तो बाह्य परिग्रहादि का त्याग क्यो कराया जाता है ?

सूक्ष्मापि न खलु हिसा परवस्तु निबन्धना भवति पुंस
हिसायतननिवृत्ति परिणाम विशुद्धये तदपि कार्या ।। ४६ ।।

पहले बताया जा चुका है कि आत्मा मे रागादिक कषाय भावो का होना ही हिसा है। यह रागादिक भाव परिग्रहादिक के निमित्त से होते हैं, इसलिए परिणामो की निर्मलता के लिये हिसा के ठिकाने परिग्रहादिक का त्याग करना जरुरी है। जिस माता के सुभट पुत्र हो जाता है उसी से कहा जाता है कि तेरे पुत्र को मारूंगा। और जिस स्त्री के पुत्र नहीं उसके प्रति ऐसे परिणाम कैसे हो सकते हैं कि मै बांझ के पुत्र को मारूंगा। सारांश यह है कि बाह्य परिग्रहदिक के निमित्त से ही कषाय

रुप परिणाम होते हैं, यदि परिग्रहादिक का त्याग कर दिया जावे तो निमित्त के विना कषाय परिणाम कैसे हो ? इसलिए यह जरुरी है कि अपने परिणामो की शुद्धता के लिए बाह्य कारण परिग्रहादिक का त्याग किया जावे ।

निश्चममबुध्यमानो यो निश्चयतस्तमेव संश्रयते ।
नाशयति करणचरणास वहि करणालसो बाल ॥ ५० ॥

कई पुरुष यथार्थ निश्चय के स्वरुप को न जानकर भी केवल निश्चय के श्रद्धानी वन कर कह दिया करते हैं, कि हमारे अन्तरंग परिणाम ठीक होने चाहिये । वाह्य परिग्रहादि रखने, या भ्रष्टाचार रुप प्रवृत्ति करने से हमारे मे क्या दोष आ सकता है ? ऐसे पुरुष दया के आचरण को नष्ट करते हैं, वह नहीं समझते कि वाह्य के निमित्त से अन्तरग परिणाम भी अवश्य अशुद्ध हो जाते हैं । वाह्य क्रिया की अपेक्षा से तो वे निर्दयी होते ही हैं वाह्य का निमित्त पाकर जव उसके परिणाम भी अशुद्ध हो जाते हैं, तो वे अन्तरग की अपेक्षा भी निर्दयी हो जाते हैं वाह्य क्रियाओ की अपेक्षा से तो वे निर्दयी होते ही है वाह्य के निमित्त से उसके अन्तरग परिणाम भी अवश्य अशुद्ध हो जाते हैं कई जीव ऐसे होते हैं जो निश्चयनय के स्वरुप को तो जानते नहीं केवल व्यवहार मात्र वाह्य परिग्रहादि को त्याग कर, उपवासादि क्रिया करते हैं । पर जीवो की दया रुप धर्म के ही साधन मे धर्म मान बैठते हैं । परन्तु शुद्धोपयोग की प्राप्ति के लिये कोई उद्यम ही नहीं करते हैं, वे केवल व्यवहार मात्र एकान्त पक्ष को ग्रहण कर निज स्वरुपानुभवरुप शुद्धोपयोगमय परम अहिंसा धर्म को प्राप्त नहीं कर पाते हैं । इसलिये जो अहिंसा धर्म के

वास्तविक रुप को जानने के अभिलाषी हैं, उन्हें एक ही पक्ष ग्रहण न करके निश्चय और व्यवहार दोनों ही अंगीकार करने चाहिये ।

आगे हिंसा के द्रव्य एवं भावरुप व परिणामों के मंद कषाय व तीव्र कषाय के फल को बताते हैं ।

अविधायापि हि हिंसा हिंसाफलभाजनं भवत्येक ।
कृत्वाप्यपरो हिंसा हिंसाफलभाजन न स्यात् ।। ५१ ।।

जिस जीव के परिणाम हिंसा रुप हो जाते हैं, चाहे व हिंसा का कोई कार्य न कर सके, तो भी वह जीव उदय काल में हिंसा के फल को भोगेगा और परिणामों में प्रमाद भाव नहीं आया तो वह हिंसा का फल भोगने का पात्र न होगा ।

एकस्याल्पाहिंसा ददाति काले फलमनल्पम् ।
अन्यस्य महाहिंसा स्वल्पफला भवति परिपाके ।। ५२ ।।

एक जीव थोड़ी हिंसा करने पर भी अपने तीव्र कषाय रुप परिणामों के कारण उदय काल में हिंसा का बहुत फल पाता है दूसरा कारणवश बाह्य हिंसा बहुत करने पर भी अपने भावों की उदासीनता और मन्द कषाय रुप परिणामों के कारण उदय काल में हिंसा का फल थोड़ा ही पाता है ।

एकस्य सैव तीव्रं दिशति फलं सैव मन्दमन्यस्य ।
व्रजति सहकारिणोरपि हिंसावैचित्र्यमत्रफलकाले ।। ५३ ।।

यदि दो पुरुष मिलकर बाह्य हिंसा करते हैं तो उनमें से

जिसके परिणाम तीव्र कषाय रूप होते हैं, उसे उदय काल मे तीव्र फल भोगना पड़ेगा और जिसके मन्द कषाय रहती है उसे उदय काल मे मन्द फल भोगना पड़ेगा।

प्रागेव फलति हिंसा क्रियमाणा फलतिश्च कृतापि।
आरभ्यकर्तुमकृतापि फलति हिंसानुभावेन ।। ५४ ।।

किसी जीव ने हिंसा का विचार तो कर लिया परन्तु अवसर न मिलने के कारण हिंसा न कर सका। और जो कर्म बन्ध किया, वह उदय मे आ गया। बाद मे इच्छित हिंसा का अवसर मिलने पर वह भी कर डाली ऐसी हालत मे हिंसा करने से पहले ही उसका फल भोग लिया जाता है। किसी ने हिंसा का विचार किया, इस विचार से जो कर्म बन्ध किया वह जिस समय उदय मे आया उसी समय वह इच्छित हिंसा को करने का भी समर्थ हो सका। इस हालत मे हिंसा करते समय ही उस हिंसा का फल भोग लेता है। किसी ने हिंसा करने का विचार किया परन्तु किसी कारण वश पीछे हिंसा को नही कर सका आरम्भ जनित कर्म बन्ध का फल उसे जरूर भोगना पड़ेगा इस हालत मे हिंसा न करने पर भी हिंसा का फल भोगना पडेगा सारांश यह है कि कषाय भावो के अनुसार ही हिंसा का फल भोगना पड़ता है।

एक करोति हिंसा भवन्ति फलभागिनो बहव।
बहवो विदधाति हिंसा हिंसा फल भुग् भवत्येक ।। ५५ ।।

कहीं एक पुरुष हिंसा को करता है परन्तु फल भोगने वाले बहुत होते हैं जैसे कहीं, कहीं दशहरे पर भैंसे को अकेला चाडाल ही मारता है परन्तु सब देखने वाले जो "अच्छा अच्छा" कहते

हैं, और प्रसन्न होते हैं, अपने अपने रौद्र परिणामो के कारण हिंसा फल के भागी होते हैं। कहीं हिंसा करते तो बहुत पुरुष है और हिंसा के फल का भोक्ता होता है एक ही पुरुष। जैसे संग्राम मे हिंसा तो बहुत से पुरुष करते हैं परन्तु उनका स्वामी राजा उस सब हिंसा के फल का भागी होता है।

कस्यापि दिशति हिंसा हिंसा फलमेकमेवफलकाले।
अन्यस्य सैव हिंसा दिशत्य हिंसाफल विपुलम् ॥ ५६ ॥

किसी पुरुष को तो हिंसा उदय काल मे एक ही हिंसा का फल देती है और किसी पुरुष को वही हिंसा बहुत से अहिंसा के फल को देती है जैसे किसी वन मे मुनिराज ध्यानस्थ अवस्था मे बैठे हैं। और एक सिंह महाक्रूर परिणामी उनको भक्षण करना चाहता है इतने मे एक शूकर कोमल अहिंसामयी परिणामो को लिये हुए सिंह से मुनिराज की रक्षा करना चाहता है। सिंह और शूकर दोनो परस्पर में लड़ लड़ कर मर जाते हैं सिंह अपने क्रूर परिणामो के कारण हिंसा करते हुए नरक में जाता है। और शूकर उसी हिंसा को करते हुये शुभ भावो के निमित्त से स्वर्ग मे जाता है

हिंसाफलमपरस्य तु ददात्यहिंसा तु परिणामे।
इतरस्य पुनर्हिंसा दिशत्यहिंसा फलं नान्यत् ॥ ५७ ॥

किसी को अहिंसा उदय काल मे हिंसा के फल को देती है। अन्य फल को नहीं। जैसे किसी के दिल मे तो किसी दूसरे का बुरा करने का परिणाम है। बाहर से वह उसके विश्वास के निमित्त भला करता है या बुरा करने का यत्न तो कर रहा है

परन्तु दूसरे जीव के पुण्य प्रभाव से उसका बुरे की जगह भला हो जाता है। तो भी बुराई का यत्न करने वाला अपने अंतरङ्ग मे हिंसा मयी परिणामो के कारण बाहर से दया करते हुये भी बुराई के ही फल का भागी होता है। किसी के अन्तरंग मे तो दया भाव है और बाहर से किसी जीव को दुखी देख उसके दुःख निवारण के यत्न मे लगता है। यत्न करते २ भी दु खी को और पीडा हो जाती है या उस निमित्त से ही उस दुःखी के प्राणान्त हो जाते हैं। यहाँ बाहरी हिंसा होते हुये भी अन्तरंग मे अहिंसा मयी परिणामों के कारण अहिंसा के फल की प्राप्ति ही होगी जैसे कोई डाक्टर किसी रोगी को दु.खी देखकर उस पर करुण भाव करता है, और यत्न पूर्वक उसकी चीरफाड़ (आॅपरेशन) कर उसके कष्ट को दूर करना चाहता है चीरफाड़ करते २ यदि रोगी की पीड़ा बढ़ जाती है या वह रोगी मर जाता है तो बाह्य हिंसा होते हुए भी अन्तरंग मे अहिंसामयी परिणाम होने के कारण, अहिंसा का ही फल मिलेगा।

> इति विविध भङ्गगहने सुदुस्तरे मार्गमूढदृष्टीनाम्।
> गुरवो भवन्ति शरणं प्रबुद्ध नयचक्रसञ्चारा ॥ ५८॥
> अत्यन्तनिशितधारं दुरासदं जिनवरस्य नयचक्रम्।
> खण्डयतिधार्यमाणं मूर्धानं झटिति दुर्विदग्धानाम् ॥ ५९॥

हिंसा के अनेक भेदो को वे ही गुरू समझा सकते हैं जो नय चक्र के ज्ञाता हैं जैनधर्म के नय चक्र का समझना बड़ा कठिन है जो बुद्धिमान् विचार करते हैं वे नय के 'different points of view' भेदों को समझा सकते हैं। जोमूढ दृष्टि बिना समझे हिंसा का स्वरुप गलत मान लेते हैं वे लाभ के बदले हानि उठाते हैं।

अब आगे श्लोक द्वारा हिंसा हिंस्य हिंसाफल का स्वरुप बताते हैं

अवबुध्य हिंस्य हिंसक हिंसा हिंसाफलानि तत्वेन ।
नित्यमवगूहमानै निजशक्त्या त्यज्यता हिंसा ॥ ६० ॥

जो पुरुष सदाकाल संवर पालन करने मे उद्यमवान् होते हैं उन्हें चाहिये कि वे पहले यथार्थता से हिंस्य, हिंसक, हिंसा और हिंसा फल इन चारो भावो को भंली भांति जान लेवें और फिर अपनी शक्ति अनुसार हिंसा का त्याग करे । (१) हिंस्य जिनकी की जावे अपने और पर जीव के द्रव्य प्राण और भाव प्राण हिंसा अथवा एकेन्द्रियादिक जीव समास । (२) हिंसक—हिंसा करने वाला जीव, (३) हिंसा—हिंस्य के प्राण पीड़न की अथवा-प्राणघात की क्रिया । (४) हिंसाफल—नरक निंगोदादिक दु:ख ।

आगे मद्य मास मधु के त्याग करने एवं उनकी उत्पत्ति व सेवन से हिंसा का भागी होना बताते है—

मद्य मास क्षौद्र पञ्चोदुम्बरफलानि यत्नेन ।
हिंसा व्युपरतिकामैर्मोक्तव्यानि प्रथममेव ॥ ६१ ॥

जो जीव हिंसा का त्याग करना चाहते हैं उनको पहले यत्नाचार पूर्वक मद्य, मास, मधु, इन तीनो प्रकार ('म' से शुरु होने वाले) और गूलर कठूमर पीपल बड़ और पाकर इन पाँच फलों का त्याग करना चाहिये ।

मद्य मोहयति मनो मोहितचित्तस्तु विस्मरति धर्मम् ।
विस्मृतधर्मा जीवो हिंसामविशङ्कमाचरति ॥ ६२ ॥

मदिरा बड़ी ही निंद्य वस्तु है, मन को मोहित कर देती है अर्थात् जीव को बेहोश बना देती है। मोहित चित्त धर्म को भूल जाता है, और धर्मभूला जीव. बिना किसी डर के बेधड़क हिंसा करने लग जाता है।

रसजाना च बहूना जीवाना योनिरिष्यते मद्यम्।
मद्य भजता तेषां हिंसा संजायतेऽवश्यम् ॥ ६३ ॥

मदिरा अनेक जीवों की योनि होती है, मदिरा-पान करने से उन सब जीवो का निश्चय से ही नाश हो जाता है, इसलिए मदिरा सेवन मे निरन्तर हिंसा का होना जरूरी है।

अभिमान भयजुगुप्सा हास्यरतिशोककामकोपाद्याः।
हिंसायाः पर्याया सर्वेऽपि च सुरक-सन्निहिता ॥ ६४ ॥

मदिरा पान करने वाले के जो भाव उत्पन्न होते है, वे सब हिंसा की ही पर्याय है। अर्थात् भेद है। अभिमान, भय, जुगुप्सा हास्य अरति, शोक, काम क्रोध आदिक विभाव सर्व मदिरा के निकटवर्ती है। मदिरा का त्याग जीव हिंसा की दृष्टि से तथा मादकता की दृष्टि से दोनो ही दृष्टि से करना भव्य आत्माओं के लिए अति आवश्यक है।

आगे मांस की उत्पत्ति एव हर अवस्था मे उसको भक्षण करनेवाला हिंसक है। यह बताया गया है।

न बिना प्राणिविघातान्मांसस्योत्पत्तिरिष्यते यस्मात्।
मांस भजतस्तस्मात् प्रसरत्यनिवारिता हिंसा ॥ ६५ ॥

मांस द्वीन्द्रियादि के शरीर में ही पाया जाता है। द्वीन्द्रियादिक जीवों के घात किये विना इसकी प्राप्ति नहीं हो सकती। इसलिये यह स्वयं सिद्ध है कि मांस भक्षी के अनिवार्य हिंसा होती है। कोई कहे कि आपसे मरे हुए पशुओं का मांस भक्षण करने में हिंसा नही होती तो उनका यह विचार सर्वथा मिथ्या है क्योंकि।

यदपि किल भवति मासं स्वयमेव मृतस्य महिषवृषभादे।
तत्रापि भवति हिंसातदाश्रितनिगोतनिर्मथनात् ॥ ६६ ॥

मरे हुए जीव के मांस मे जिस जीव का वह मास है उसी जाति के निगोद रूप अनन्त जीव पैदा होते रहते हैं, इसलिए उस मास के भक्षण मे उन जीवो का घात होने से हिंसा होती है।

आमास्वपि पक्वास्वपि विपच्यमानासुमासपेशीषु।
सातत्येनोत्पादस्तज्जातानां निगोतानाम् ॥ ६७ ॥
आमां वा पक्वां वा खादति य स्पृशति वा पिशितपेशीम्।
स निहन्ति सतत निचित पिण्डं बहुजीव कोटीनाम् ॥ ६८ ॥

मांस की डलियो की सर्व ही अवस्थाओं मे समय २ पर अनन्त जीव निरन्तर उत्पन्न होते रहते हैं, इसलिए जो पुरुष मांस की डली को भक्षण करता है या छूता भी है, वह अनेक जीव समूह की हिंसा का भागी होता है।

मधुशकलमपि प्रायो मधुकर हिंसात्मक भवति लोके।
भजति मधुमूढधीको य स भवति हिंसकोऽत्यन्तम् ॥६९॥

स्वयमेव विगलितम् यो गृह्णीयाद्वाछलेन मधुगोलात् ।
तत्रापि भवति हिंसा तदाश्रयप्राणिनांघातात् ॥ ७० ॥

मधु या शहद —यह मक्खियो का उगाल होता है, इसके आश्रयभूत वहुत से जीव होते हैं । मधु छत्ते मे से छल कपट करके लिया जाता हे । छत्ता तोडने मे उसके आश्रय भूत प्राणियो का घात होता है । शहद भक्षण करने वाला मनुष्य अत्यन्त हिंसा का भागी होता हे । यदि छत्ते को न तोड कर सुराख करके शहद निकाल लिया जावे तो भी उसमे अनेक जन्तु, रस के कारण पैदा होते रहते व मरते रहते हें । सद्गृहस्थो को इन तीनो मकारो (मध, मास, मधु) का त्याग करना ही योग्य है "यह हिंसा" जो मन, वचन, काय, कृत कारित अनुमोदना से त्याग करेगा वह ही अहिंसा धर्म का फल पा सकता है । इस विषय मे एक फिलोसिफर ने इस प्रकार स्पष्ट लिखा है कि—

One who cooks the meat, one who puts the meat One who eats the meat, these are all considered killer's because if a man will not eat the meat, then who will cook the meat ? If a man will not cook the meat then who will put the meat on the table ? therefore these are all considered (माने जाते हैं) killer's मारनेवाले

विश्व-धर्म अहिंसा

आत्मा के स्वभाव को धर्म कहते है । आत्मा का स्वभाव अहिंसा रूप है । ससार मे सिह वाघ, चीता, भेड़िया, आदि

वहुत से जीव हैं, जो दूसरे जीवो को मारकर हिंसा किया करते हैं, अत. क्रूरता निर्दयता दुष्टता उनका जन्म काल से ही स्वभाव सा वना होता है। कसाई, मछली मार, चिडियामार, भील, आदि जातियो के स्त्री-पुरुष अपनी कुल परम्परा से पशु पक्षियो को अपनी वाल्यावस्था से ही मारने लगते हैं। अत छोटे जीव जन्तुओ को मारने कुचलने आदि से उनको कुछ सकोच नहीं होता।

मांसभक्षी जीवो की ऐसी दयाहीन प्रवृतियाँ को देखकर आशका की जा सकती है कि अहिंसा (किसी को न मारना, किसी को कष्ट न देना) आत्मा का स्वभाव कैसे माना जावे ?

प्रश्न ठीक है, किन्तु इनका समाधान यह है कि जिस तरह जल का स्वभाव गर्म नहीं है अग्नि के संयोग से वह गर्म हो जाता है, उससे यदि अग्नि का सयोग छूट जाता है तो वह स्वयं ठंडा हो जाता है। इसी तरह जो पशु-पक्षी या मनुष्य निर्दय (हिंसक) होते हैं, वह दयाहीन हिंसक प्रवृत्ति उनकी स्वाभाविक नहीं होती, किसी ससर्ग या निमित्त से उनमे होती है। फिर भी स्वाभाविक दयाभाव व अहिंसक भावना उनमे भी समय-समय पर प्रकट होती रहती है। सिंह, बाघ, भेड़िया अन्य पशुओ को तो निर्दयता से मार डालते हैं किन्तु वे अपने बच्चो पर दया भाव रखते हैं, अपने परिवार पर उनका निर्दय प्रहार नहीं होता, न उन्हे अपने ऊपर किसी शिकारी का वन्दूक, भाला बाण आदि द्वारा होने वाला आक्रमण अच्छा लगता है। इसी प्रकार अन्य जीवो की हत्या करने वाले कसाई चिड़ी मार, धीवर आदि भी अपने लिये, अपने प्रिय परिजनो के लिये हिंसा का उपयोग नहीं करते, उन्हे अपने लिये अहिंसा की

भावना बनी रहती है, अपने ऊपर किसी तरह का प्रहार होना अच्छा नहीं लगता। इसका अभिप्राय यही है कि प्रत्येक प्राणी कम से कम अपने लिये तो अहिंसा ही चाहता है, अपने प्राणो की हिंसा किसी भी जीव को पसंद नहीं हैं। जो खूंखार दुष्ट जीव दूसरे को मारने, चीरने, फाड़ने व खाने के लिये सदा तैयार रहते है वे भी अपनी रक्षा चाहते हैं।

इस तरह जगत् के समस्त जीवों को "अहिंसा" ही प्रिय है, इस कारण विश्व का धर्म अहिंसा रूप हो सकता है। महाभारत मे अहिंसा का महत्व समझाने के लिये लिखा है।

एकतः काञ्चनो मेरुः कृत्स्ना चैव वसुन्धरा
जीवस्य जीवितं चैव न तत्तुल्यं युधिष्ठिर ॥

अर्थात्–भीष्म पितामह युधिष्ठिर को सम्बोधन करके कहते हैं कि एक ओर तो मेरु पर्वत के बराबर सोना अथवा समस्त पृथ्वी दान के लिये रक्खी जावे और दूसरी ओर एक प्राणी का जीवन (जिन्दगी) रक्खा जावे तो वे बराबर नहीं है। अर्थात् पर्वत के बराबर सोना और समस्त पृथ्वी का दान इतना महत्वशाली नहीं है। जितना महत्वशाली किसी जीव के प्राण का बचाना है। यदि किसी मनुष्य को उसकी मृत्यु के बदले में समस्त पृथ्वी का राज्य देने की घोषणा की जावे तो वह मनुष्य उस राज्य को ठुकरा देगा, अपने प्राण देने के लिये तैयार न होगा।

इसका कारण यह है कि संसार मे सबसे अधिक दुःख अपनी मृत्यु का होता है। इसीलिये दीन, दरिद्री रोगी, दुःखी

जीव भी मरने के लिये तैयार नहीं होता। अपने प्राणो को प्रत्येक जीव सबसे अधिक प्यारा समझता है। ऐसी दशा मे समस्त जीवो का सर्वोत्कृष्ट धर्म अहिंसा ही हो सकता है। मांस खाने से एक ही जीव की हिंसा नहीं होती अपितु असंख्य कीटाणुओं की भी हिंसा होती है।

किसी भी मत मे किसी जीव को दुःख देना, मारना तथा मास खाना धर्म नहीं बतलाया। मास लोलुपी स्वार्थी लोगो ने अपनी दुर्वासना सिद्ध करने के लिये किन्ही २ ग्रन्थो मे हिंसा करने की बाते मिला दी हैं। बौद्ध धर्म के सस्थापक महात्मा गौतम बुद्ध गृहस्थ अवस्था से ही बहुत दयालु थे। घर बार छोड़ कर पहले जैन साधु बने, फिर कुछ दिन बाद लाल कपड़े पहन कर उन्होने नया पथ चलाया। उस साधु अवस्था मे भी उन्होने यज्ञो मे होने वाली पशु हिंसा को रोकने के लिये अहिंसा का खूब प्रचार किया। लकावतार सूत्र बौद्ध मत का एक प्रसिद्ध

ग्रन्थ है। सन् १९२२ मे प्रकाशित लकावतार सूत्र मे लिखा है कि-

मद्यं मांस पलाडुं च त भक्षयेय महामते।
बौधिसत्वैर्महासत्वै मांसादिवज्जिन पुंगवै ॥ १ ॥

मांसानि च पलांडूंश्च मद्यानि विविधानि च।
गृंजान लशुनं चैव योगी नित्यं विवर्जयेत् ॥ ५ ॥

लाभार्थं हन्यते सत्वो मांसार्थं दीयते धनं।
उभौ तौ पापकर्माणौ पच्येते रौरवादिषु ॥ ६ ॥

हस्तिकक्ष्ये महामेधे निर्वाणांगुलिमालिके ।
लंकावतारसूत्रे च मया मांस विवर्जितम् ।। १५ ।।
तथैव रागो मोक्षस्य अन्तरायकरो भवेत् ।
तथैव मांसमद्याद्यप्यन्तरायकरो भवेत् ।। १० ।।
तस्मान्न भक्षयेन्मांसमुद्वेगजनकरं नृणाम् ।
मोक्षधर्म विरुद्धत्वादार्याणामेष वै ध्वज ।। २४ ।।

हे महामते ! बौद्धमती महाबौधमती किसी को भी मांस, मदिरा, प्याज नही खाना चाहिये ऐसा जिनेन्द्रो ने कहा है ।१।

मांस, प्याज, नाना प्रकार की मदिरा, गाजर, लहसुन, का योगी को निषेध है ।। ५ ।।

जो प्राणी लोभ के लिये प्राणी को मारते हैं व मांस के लिये धन देते हैं । दोनो ही पापी रौरवादि नरको मे जायेगें ।६।

हस्ति कक्ष्य मे महामेघ मे निर्वाणांगुलिमालिका मे और लंकावतार सूत्र मे मैंने मांस का निषेध किया है ।। १५ ।।

जैसे मोक्ष के लिये राग विघ्नकारी है वैसे मांस मद्यादि विघ्नकारी है इसलिये मांस नहीं खाना चाहिये । यह प्राणियो को भयोत्पादक है । १० ।

यह मोक्ष धर्म के विरुद्ध है, अत' मांस न खाना यही आर्यो की ध्वजा है ।। २४ ।।

महात्माबुद्ध की भविष्यवाणी

न च महामतेऽकृतकमकारितमसकल्पित नाम मास कल्प्यमस्ति यदु-पायानुजानीय श्रावकेभ्य। । भविष्यति तु पुनर्महामतेऽनागतेऽध्वनिममैव शासने प्रव्रजित्वा शाक्यपुत्रीयत्व प्रतिजानाना काषायध्वजधारिणो मोह पुरुषा मिथ्यावितर्कोपिहतचेतसो विविध विनय कल्पवादिन सत्कायदृष्टि युक्ता रसतृष्णाध्ववसितासा ता मास भक्षणहेत्वाभासा ग्रन्थयिष्यन्ति मम चाभूताख्यान दातव्य मनस्यन्ते तत्तदर्थोत्पत्तिनिदान कल्पयित्वा वक्ष्यन्ति । इय अर्थोत्पत्तिरस्मिन्निदाने भगवता मास भोजनमनुज्ञात कल्प्यमिति । प्रणीतभोजनेषुचोक्त स्वय च किल तथागतेन परिभुक्तमिति । न च महामतेकुत्रचित्सूत्रे प्रतिसेवितव्यमित्यनुज्ञात प्रणीतभोजनेषुवा देशित कल्प्यमिति ।

हे महामते ! कोई मास अकृत अकारित व असकल्पित लेने योग्य नहीं है जिसे लेकर मै श्रावको को आज्ञा करूँ । हे महा-मते ! भविष्य मे मेरे ही शासन मे ऐसे व्यक्ति होगें जो साधु दीक्षा लेकर शाक्य पुत्र की आज्ञा मानने वाले होकर, गेरुआ रग की ध्वजा धारने वाले होकर, मोही पुरुष मिथ्या तर्क चित्त मे उठाकर आचार के विविध भेद कहेगें । शरीर मे ही जिनकी दृष्टि होगी, रस की तृष्णा मे रोगी होगें वे मास भक्षण के लिये खोटे हेतुओ को बना लेगें । जो बात मैने नहीं कही है उसे वे मानेंगे व जिससे मासाहार की पुष्टि हो ऐसी बात कहेंगे । भक्ष्य भोजनो मे मास की आज्ञा दी है ऐसी बात कहेंगे । इसी कारण भगवान ने मास को आज्ञा दी है, ऐसी कल्पना करेंगे । भक्ष्य भोजनो मे मास कहा है व स्वय भगवान ने मांस खाया है ।

परन्तु हे महामते मैने किसी भी सूत्र मे मास को सेवन योग्य नहीं कहा है न आज्ञा दी है, न उत्तम भोजन मे कहा है, न लेने योग्य कहा है। उपनिषदो, पुराणो आदि वैदिक धर्म ग्रन्थों मे भी अन्य प्राणी को सताना, मारना, मासखाना आदि निपिद्ध (छोडने योग्य) बतलाया है। यहां हम कुछ प्रमाण उन ग्रन्थों के रखते हैं।

महाभारत के शाति पर्व अ० २६५ मे अहिसा का सुन्दर प्रतिपादन किया है।

> अहिसा सर्वभूतेभ्यो, धर्मेभ्यो ज्यायसीमता।
> सुरामत्स्या मधुमासमासवं कृसरौदनम्।। ६ ।।
> धूर्तैः प्रवर्तितं ह्येतत्, नैतद् वेदेषु कल्पितम्।
> मानान्मोहाच्च लोभाच्च, लौल्यादेतत् प्रकल्पितम्।।
> विष्णुमेवाभिजानन्ति, सर्वयज्ञेषु ब्राह्मणाः।
> पायसैः सुमनोभिश्च, तस्यापि यजन स्मृतम्।। ११

प्राणियो की हिसा न करना ही सब धर्मों मे श्रेष्ठ है। मद्य, मांस, मछली, मधु आसव और तिल मिले हुये चावलो का भक्षण अभिमान, मोह, लोभ और लोलुपता से धूर्तों के द्वारा प्रचलित किया गया है। यह सब वेदों मे नहीं है। ब्राह्मण लोग सब यज्ञों मे विष्णुः (व्यापक परमात्मा) को ही जानते हैं (यज्ञो वै विष्णु) यह कहा गया है) उनकी पूजा तो दूध और फूलो से की गई है।

महाभारत मे यहां तक लिखा है—

निम्न श्लोक मे स्पष्ट मद्य, मास, रात्रि भोजन व कंदमूल सेवन से सर्व तप व्रत व्यर्थ बताते हैं।

मद्यमांसाशनं रात्रौ भोजनं कंदभक्षणम्।
ये कुर्वन्ति वृथा तेषां तीर्थयात्रा जपस्तपः।।
चातुर्मास्ये तु सम्प्राप्ते रात्रिभोज्यं करोति य.।
तस्य शुद्धिन विद्येत चान्द्रायणशतैरपि ।।

अर्थात् जो मनुज्य शराव पीते हैं, मास खाते हैं, रात को भोजन करते हैं, कन्दमूल खाते हैं, उनको तीर्थयात्रा और जप तप करना व्यर्थ है। जो वर्षा के चार महीनो मे रात को खाते हैं उनकी शुद्धि सैंकडो चान्द्रायणव्रत करने से भी नहीं होती।

रुद्र पुराण मे लिखा है—

सर्वे तनुभृतस्तुल्या यदि बुध्या विचार्यते।
इति निश्चित्य केनापि न हिंस्य कोऽपिकुत्रचित।

यदि विचार किया जावे तो समस्त जीव एक समान है, ऐसा निश्चय करके कोई भी जीव कहीं भी मरना उचित नहीं है।

मनुस्मृति मे लिखा है—

वर्षे वर्षेऽश्वमेधेने यो यजेत् शतं समा।
मासानि न च खादेत्; तयो पुण्यफलं समम्। ५-५३।

अर्थात जो मनुष्य सैंकड़ों वर्षों तक प्रतिवर्ष अश्वमेध, यज्ञ

करे और जो मनुष्य मास भक्षण न करे, उन दोनो का पुण्य फल एक समान है ।

श्रीमद् भागवत मे लिखा है—

सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपोदानानि चानघ ।
जीवाभयप्रदानस्य न कुर्वीरन् कलामपि । ३-७-१३

समस्त वेदो का पाठ, समस्त यज्ञ, तप और बडे २ दान जीव रक्षा के एक अंश के बराबर भी नहीं है ।

महाभारत मे देखिये—

अहिंसा लक्षणो धर्मो ह्यधर्म. प्राणिनावधः ।
तस्माद् धर्माथिभिर्लोके कर्त्तव्या प्राणिना दया ।।

यानी— धर्म का लक्षण अहिसा है, जीवों को मारना अधर्म है । इस कारण धर्म के इच्छुक पुरुषो को प्राणियों पर दया करनी चाहिये ।

कपिलानां सहस्राणि यो द्विजेभ्यः प्रयच्छति ।
एकस्य जीवित दधात् स च तुल्यं युधिष्ठिर ।।

एक मनुष्य जो कि ब्राह्मणो को हजारो गाय दान करता है और एक पुरुष जो कि किसी का जीवन बचाता है हे युधिष्ठिर वह हजारो गाय दान करने के बराबर है ।

गरुड पुराण मे लिखा है—

अहिंसा परमोधर्मः पापमात्मप्रपीड़नम् ।

अहिंसा परम धर्म है और जीवों को सताना परम पाप है ।

मार्कण्डेय पुराण मे लिखा है—

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम् ।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ।।

यानी—व्यास ऋषि रचित १८ पुराणों का सार दो बातों मे है (१) अन्य जीव का उपकार करना पुण्य है और २ अन्य जीव को दु ख देना पाप है ।

विष्णु पुराण मे लिखा है—

अल्पायुषो दरिद्राश्च परकर्मोपजीविनः ।
दुष्कुलेषु प्रजायन्ते ये नरा मांस भक्षकाः ।।

जो मनुष्य मांस खाते हैं, वह अल्पायु (छोटी उम्र वाले) दीन, दरिद्र दास होते हैं तथा नीच कुलो मे जन्म लेते हैं ।

महाभारत के अनुशासन पर्व मे कहा है—

स्वमांसं परमांसेन यो वर्द्धयितुमिच्छति ।
नास्ति क्षुद्रतरस्तस्मात् स नृशंसतरो नरः ।अ०११६

अर्थात्—जो मनुष्य अन्य जीव का मांस खाकर अपने शरीर का मास वढाना चाहता है, वह मनुष्य वहुत नीच पुरुष है उससे नीच और कोई नहीं है ।

दुर्गा देवी शिवजी को कहती है—

मदर्थं शिव कुर्वन्ति तामसा जीवघातनम् ।
आकल्प कोटिं नरके तेषा वासो न संशय ।

हे शिव ! जो तामसी प्रकृति के दुष्ट मनुष्य मेरे लिये जीवो को मारते हैं, वे मनुष्य करोडो कल्पकाल तक नरक मे रहते हैं, इसमे जरा भी सन्देह नहीं है ।

महाभारत मे लिखा है—

ये रात्रौ सर्वदाहारं, वर्जयन्ति सुमेधस. ।
तेषां पक्षोपवासस्य मासमेकेन जायते ।।

जो मनुष्य सदा रात मे भोजन नहीं करते उनके एक मास मे १५ दिन का उपवास हो जाता है । यानी उनकी आयु का आधा समय उपवास करने के समान व्यतीत होता है इत्यादि अनेक पौराणिक प्रमाणो से यह सिद्ध होता है कि हिन्दू धर्म मे मास भक्षण तथा जीवो का वध करना निषद्ध ठहराया गया है अत किसी भी हिन्दू को देवी देवताओ के लिये पशु पक्षियों का बलिदान तथा पशु यज्ञ कभी नहीं करना चाहिये और न ही मांस खाना चाहिये ।

मांस में पोषक तत्व

मांस भक्षी मनुष्य यह समझते हैं कि मांस खाने से शरीर में अन्न, फल, दूध, दही आदि की अपेक्षा अधिक शक्ति आती है सो यह भी भ्रम है । वैज्ञानिक ढंग से जाँच करने पर अन्न, फल

मांस आदि पदार्थों में जो शक्ति उत्पन्न करने वाले पोषक अंश हैं वे निम्न लिखित हैं—

बादाम मे	६१ प्रतिशत
सूखे चने, मटर में	८७ ,,
चावल मे	८७ ,,
गेहूं के आटे में	८६ ,,
जौ के आटे मे	८४ ,,
दाख आदि मेवा में	७३ ,,
घी में	८७ ,,
मलाई मे	६६ ,,
दूध मे	१४ ,,

(दूध मे ८६ प्रतिशत जो पानी होता है वह भी शरीर के लिये लाभदायक होता है)

अंगूर आदि फलों में (फलो का जलीय अश भी लाभकारक होता है।)

मांस मे	२८ ,,

(मांस का जल अश शरीर के लिये हानिकारक होता है)

मछली से	१३ ,,

इस अहिंसा पर एक दार्शनिक ने कहा है कि No difference between men and animals–

अर्थात्–मनुष्यों मे और पशुओ में कोई अन्तर नहीं है अगर वह अहिंसा धर्म को नहीं अपनायें तो More difference between men and animals

अर्थात्-अगर अहिंसा धर्म को अपनायें तो उन मनुष्यों और पशुओं मे बहुत अंतर हो जायेगा।

और-मनुष्य को महाव्रतादि धारण करने की योग्यता है। इस अपेक्षा से पशुओ से मनुष्य ऊँचे हैं। "मनुष्य को हर समय मृत्यु लगी हुई है। इस पर एक फिलोस्फर ने कहा है कि-
Death is here and death is there, death is busy every-where all around within beneath adove is death and we are death.

अर्थात्-मरना यहाँ भी है और अन्य लोक मे भी है। और मरण अन्यत्र जगह भी (सभी जगह है) चारो तरफ भी है और नीचे के भाग मे भी मरण है। उपर के भाग मे भी मरण है। और हम स्वय मरने के सम्मुख है जहां जन्म होगा वहाँ मरण होगा। ये जीव अनादि काल से जन्म मरण करता आया है। इस पर भगवद्गीता मे श्रीकृष्ण-महाराज कहते है कि-

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायम् भूत्वा भविता
न भूयः
अजो नित्य शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने
शरीरे !!

यह आत्मा किसी काल मे भी न जन्मता हैं, और न मरता है अथवा न यह आत्मा हो करके फिर होने वाला हैं, क्योकि यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन है, शरीर के नाश होने पर भी यह नाश नहीं होता है इसलिए इस आत्मा के कल्याणार्थ-

१. द्रव्य हिंसा—१० प्राणो का घात २. भावहिंसा—आत्मा में राग द्वेषादि परिणाम करना हमे इन दोनो प्रकार के हिंसा का त्याग करना आवश्यक है। आगे जिनसेनाचार्यकृत हरिवंश पुराण सर्ग ५५ पद्य १२ में लिखा है कि (नेमिनाथ भगवन् का ऐसा विचार हुआ और वैराग्य हुआ—

चरणकटण्कवेधभयाद्भटा विदधते परिधानमुपानहाम् ।
मृदुमृगान मृगयासु पुनः स्वयं निश्चितशस्त्रशतैः पहरन्तिहि

(जो स्वयं तो पैर मे कांटा चुभने के भय से जूता धारण करता है, परमूक पशुओ पर तीक्ष्ण शस्त्र प्रहार करता है उस क्रूर मनुष्यो को धिक्कार है ।)

श्रीकृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हुये कहते हैं कि हे अर्जुन जो पुण्य, जीवो पर दया भाव रखने से प्राप्त होता है वह वेद मंत्रो के उच्चारण करोड़ो यज्ञ करने से, तीर्थ यात्रा करने से एव पवित्र जल में डुबकी लगाने से नहीं हो सकता अथर्ववेद (आठवाँ काण्ड वर्ग ६) मे कहते हैं कि—

I destroy those who eat flesh and eggs.

अर्थ—जो मांस भक्षण करते हैं मैं उनका हनन करता हूं ।

आगे मास के विषय में कुरान शरीफ, गुरु ग्रंथ साहव, व सत कवीर के विचार दिये गये हैं ।

३. कुरान शरीफ (पेरा नं० १७ रुक नं० ५ आयत ३८)

By no means can this flesh reach in to God

neither their bloods but pity on your part reaches there.

अर्थ—अल्लाह् के पास न ये मांस और न ये खून पहुच सकता बल्कि आपका दयाभाय ही वहाँ पहु चता हैं।

४. गुरु ग्रन्थ साहब (सिक्खो के लिये) The persons who take meat fish and wine in the diet Surely destroy he merits of Japa tapa and religious deeds

अर्थ—जो व्यक्ति अपने भोजन मे मास मछली और शराब लेते हैं, वे अपने सम्पूर्ण जपतप और धार्मिक कृत्यों से प्राप्त पुण्यो का नाश करते हैं।' मास भक्षण पर चिकित्सा विज्ञान का मत यह है कि

Eminent Doctors are of the opinion

Meat eating causes some serious and fatal diseases like high blood pressure, heart attack due to excess of calistril poison in the blood

अर्थ—प्रसिद्ध चिकित्सकों के अनुसार—मास भक्षण से रक्त मे स्थित कॉलिस्ट्रिल नामक विष की अधिकता से हाई ब्लड प्रैसर (रक्तचाप) एव हृदय रोग जैसी प्राण-घातक बीमारियां हो जाती है।

२ The meat by virtue of its nature, is not easily digestable and hence causes oscitation and sullenness

Epilepsy aud some mental diseases are causes due to meat eating

मांस अपने स्वभाव के कारण शीघ्रता से नहीं पचता है इसलिये उन्माद और आलस्य पैदा होता है।

मृगी एव अन्य मानसिक बीमारिया मास भक्षण से उत्पन्न होती है

आगे सन्त कबीर कहते हैं कि—

तिलभरमच्छी खायकर कोटि गौ दे दान।
काशी करवट ले मरे तो भी नर्क निदान॥

जो तोहरा को वामन कहिये काको कहिए कसाई
मद्य मास जे करे आहारा चौसठ जन्म गृद्ध अवतारा॥

मांसाहारी मानवा प्रत्यक्ष राक्षस जान।
इनकी संगति जो करे होय भक्ति निहान॥

जब यह मन कागा हता, करता जीवन घात
अब यह मन हसा हुआ मोती चुन चुन खात।

इन दोहों से सिद्ध होता है कि विवेकी पुरुषो को किस प्रकार चलना चाहिये।

दृष्टिपूतंन्यसेत्पादं वस्त्रपूत पिवेत् जल।
सत्यपूतं वदेद्वाक्य मनः पूत समाचरेत्॥

मनुस्मृति मे इस प्रकार कहते हैं कि जमीन पर पांव देख

भाल के ही रखना चाहिये, वस्त्र से पूत (छान करके) जल पीना चाहिये, सत्य से पवित्र वचन बोलना चाहिए, और मन को पवित्र करके कार्य करना चाहिए।

अत. जो भी कार्य किया जाय वह वचन और शरीर की साक्षी से ही नहीं, हृदय की साक्षी होने पर ही करना उचित है हृदय अपराधो और पापो के करने मे कभी किसी को साक्षी नहीं देता। जो हृदय इन कामो को करने की साक्षी देता है वह वास्तव मे हृदय नहीं है। नय से हृदय का स्वामी मानव कहलाने का अधिकारी ही हो सकता है। श्वेतावर सप्रदाय मे भी श्री हेमचन्द्र सूरि ने रात्रि भोजन मे स्वास्थ्य आदि के लिए हानिकारक दोष भी बतलाये है।

मेधां पिपीलिका हन्ति, यूका कुर्याज्जलोदरम् ।
कुरूते मक्षिका वांति कुष्ठरोग च कोलिकः ॥

यदि भोजन मे कीडा कीडी (चींटा चींटी) खाने मे आ जाय तो बुद्धि नष्ट हो जाती है, मकडी खाने मे आ जाय तो महान् भयकर जलोदर रोग हो जाता है, मक्खी खाने मे आ जाय तो वह खाया सब निकाल देती है अर्थात् वमन करा देती है और यदि कोलिक नामका जन्तु पेट मे चला जाय तो खाने वाले के महान भयंकर रोग जो कोढ है उसे पैदा कर देता है (विदित हो कि रात मे ये सब पदार्थ दीखते नहीं और भोजन मे गिर भी सकते हैं, और खाने मे भी आ सकते हैं।)

अहिंसाव्रतरक्षार्थं मूलव्रतविशुद्धये ।
नक्तं भुक्तिं चतुर्धापि सदा धीरस्त्रिधा त्यजेत् ॥

सागर धर्मामृत अ० ४-२४

अर्थ—अहिंसा व्रत की रक्षा और मूल व्रत की विशुद्धि के लिए धैर्य धारक गृहस्थ का कर्तव्य है कि रात्रि के समय खाद्य स्वाद्य लेह्य और पेय इस प्रकार के भोजन का त्याग करदे।

अंग्रेजी भाषा मे एक कहावत है कि—

Deeds of Darkness are committed in the dark

अर्थात् ससार मे जितने भी अन्याय और अत्याचार के कार्य होते हैं वे प्रायः अन्धकार मे ही किये जाते हैं। भोजन के ऊपर ही आधारित है।

यह भोजन न दिन मे बनाया हुआ रात के समय खाना चाहिये और न रात के समय बनाया हुआ दिन मे ही खाना खाना चाहिये। भोजन सूर्य के आलोक मे ही बनाना चाहिए और सूर्य के आलोक मे ही खाना चाहिये।

महाभारत मे मधु सेवन से कितना पाप लगता है इस विषय मे लिखा है कि—

सप्तग्रामेषु दग्धेषु यत्पापं जायते नृणाम्।
तत्पापं जायते तेषां मधु विन्द्वेक भक्षणात्॥

अर्थात् सात गाँव जलाने मे जितना पाप किसी मनुष्य को होता है उतना ही पाप शहद की एक बून्द के खाने से होता है

सिक्खों के गुरु नानक जी कहते हैं कि—

भागमाच्छुरीसुरापान जो जो प्राणी खाय।
तीर्थव्रत नियम कर रसातल मे जाय॥

अर्थात् जो कोई मधु, मांस शराब सेवन करते है वे कितनी भी तीर्थयात्रा करे और व्रत नियम सयम का पालन करें तो भी नियम से दुर्व्यसन के कारण नरक मे जायेगें इस लिए बुद्धिमानो को विश्व धर्म का स्वरुप जानकर अहिंसा धर्म का पालन करते रहना चाहिये ।

विश्व धर्म का मूल तत्व

इस युग मे विश्व धर्म के नेता श्री १००८ श्री महावीर भगवान ने विश्व धर्म के मूल तत्व पर कहा है कि—

LI\ E AND LETLIVE

अर्थात्—"जीवो और जीने दो" आप स्वय जीना और दूसरे को भी जीने देना। ससार मे कोई भी जीव मरना नहीं चाहता। इस लिए हर एक को चाहिये कि अपने समान सभी प्राणियो की रक्षा करना, इससे अपनी रक्षा नियम से होगी। हजरत ईसा ने तीन बाते लिखी है—

1 SELF RELIANCF

अर्थात्—प्रत्येक व्यक्ति को इस जीवात्मा पर विश्वास रखना आवश्यक है।

2. KNOW THY SELF

अर्थात् इस आत्मा को विश्वास के साथ २ ज्ञान एव चरित्र के द्वारा अपने को देखने का पुरुषार्थ करना परमावश्यक है।

3. UNIVERSAL LOVE

वह पुरुषार्थ तभी सार्थक होगा जव विश्व के समस्त प्रा-

णियो से मैत्री भाव हो। हम इस विश्व धर्म अहिंसा के मूल तत्व को प्राप्त करने के लिये हमे आज प्रचलित हर मत के हर आचार्यो के हर सन्तो के तथा विद्वानो की बात पर विचार करना आवश्यक है विचार कर हम अपनी बुद्धि से हेय बात को त्याग कर उपादेय तत्व को ग्रहण करना ही श्रेयस्कर है। इस पर कहा भी है कि—पक्षपातो न मे वीरो न द्वेष कपिलादिषु युक्तिमद् वचनं यस्य तस्य कार्यं परिग्रह" अर्थात—मुझे न वीर प्रभु से पक्षपात है न कपिलादि अन्य मतावलम्बी पक्षपात है मुझे तो जिस मत मे युक्ति युक्त आत्महित की बात है वह ग्राह्य है।

सन्त कबीर कहा है कि—

बाट विचारे क्या करे पथी चले न सुधार।
सीधा रास्ता छोड़कर चलत उजार उजार ॥

अर्थात्—मोक्ष का रास्ता क्या करे यह मनुष्य पथ के झगड़े मे पड़ कर सीधा रास्ता छोडकर टेढ़ामेढा चलने से इसका सुधार नहीं हो रहा है और कहते हैं कि—

ग्रन्थ पंथ सब जगत के बात बतावत तीन,
ईश हृदय मनमे दया तन सेवन में लीन।

अर्थात्—इस विश्व मे जितने भी ग्रन्थ हैं, जितने भी पथ है उन सबकी सार पूर्व ती बाते तीन है कि—
१ हृदमे मे ईश्वर का स्मरण करो। २ मन मे दया भाव रखो तथा ३. शरीर मे स्थित आत्म स्वरुप मे लीन हो। कबीरदास

की यह तीनों बातें भगवान महावीर स्वामी के अहिंसा तत्व से मिलती जुलती है। कबीर कहते हैं कि—

वस्तु कहीं ढूंढत कहीं किस विधि आवे हाथ,
कहा कबीर तव पाइये भेदी लीजे हाथ।
भेदी लीनो हाथ तव दीनी वस्तु लखाय।
कोटि जन्म का पन्थ था क्षरण मे पहुचे जाय॥

कवीर का कथन है कि जव भेदज्ञान होगा तव ही स्वसंवेदनप्रगट होगा। अगर तू कहीं ढूढता रहे और परमात्म तत्व कहीं दूसरी जगह रहे तो फिर किस विधि से वह तत्व प्राप्त हो सकता है अर्थात् नहीं प्राप्त होगा। जव भेदज्ञान हो जायेगा तव करोड़ो जन्म मे पन्थ के भ्रम मे खोया हुआ यह आत्मा को स्वानुभूति को क्षरण मे प्राप्त कर उस अनन्त सुख का अनुभव करने लगता हैं। उस समय उसको आत्मा मे तीनो लोक के पदार्थ झलकने लगते हैं। यह कथन जैन मत के अनुसार निश्चय से वरावर मिलता जुलता हैं। इस विश्व धर्म के मूल तत्व मे स्वानुभूति मुख्य हैं। जव तक आत्मा को नहीं समझेगें तव तक स्व-अनुभूति होना असम्भव है। इस आत्मा के विषय पर आज के एक फिलासिफर ने इस प्रकार कहा है कि—

The soul is perceptible to the mental eye and not to the physicaleye, as in the case of the body The soul is in the body just like the gold in the stone, fragrance in the flower, zhee in the milk and fire in the wood The lustre that is found in the stone is the

quality of the gold, the rigidity found in the wood is the symbol of a fire The cheese found in the milk is an indication of the presence of ghee All these things are visible to all people in the same way the activity, the capacity to know, and the power of speech are the qualities of the soul hidden in the body

"If we by some process, separate the stone we get the gold If we convert the milk in to curd and churn it, we get the butter, from the butter we get the ghee By rubbing the wood we get the fire, like this body is separate from the soul If we mediate on the qualities of the soul, We can see the pure soul or paramatama in our mental imagery.

अर्थात्—शरीर की तरह आत्मा चर्म चक्षुओं से नहीं देखी जा सकती है। आत्मा शरीर में इस तरह रहती है जैसे कि पाषाण में स्वर्ण, पुष्प में सुगन्ध, दूध में घी और लकड़ी में आग तथा पाषाण में चमक सोने का ही गुण है। लकड़ी में पाई जाने वाली कठोरता अग्नि का चिन्ह है। दूध में जो पनीर पाया जाता है वह घी का स्पष्ट संकेत है। लोगों को ये सभी वस्तुएँ दृष्टि गोचर है। इसी प्रकार क्रियां शीलता ज्ञान शक्ति तथा बोलने की शक्ति आत्मा के ही गुण है। उस आत्मा के जो शरीर में छिपी हुई है। पाषाण को पृथक कर देने पर हम स्वर्ण प्राप्त करते हैं। दूध का दही बनाकर मथने पर मक्खन और मक्खन से फिर घी प्राप्त होता है। लकडी को रगडने से अग्नि मिलती है।

इसी प्रकार शरीर के बन्धन से छूटने पर आत्मा अवशेष रह जाती है यदि हम आत्मा के गुणो का ध्यान करें तो हम अपनी मानसिक कल्पनाओ में शुद्धात्मा अथवा परमात्मा के दर्शन कर सकते हैं।

यहा कहने का मतलब यह है कि जिसने अपनी आत्मा को समझ लिया उसने विश्व धर्म को समझ लिया। कारण अपने को समझने वाले दूसरे को भी अपने समान समझ कर मैत्री-भाव रखते हैं। विश्व धर्म का मूल तत्व यह है कि जिसने रागादिक परिणति नहीं की है वही सच्चा अहिंसा धर्म है।

विश्व धर्म का आधार

एक फिलासिफर ने कहा है कि—"The god is not creator of the world,

अनादि निधन इस विश्व का निर्माण किसी भी भगवान के द्वारा नहीं हुआ।

The universe is beginingless and endless, it was not created at any particular time

अर्थात्—यह विश्व अनादि काल से है और अनादि काल तक रहेगा। इसके निर्माण का कोई निश्चित समय नहीं है। इस विश्व में अनन्तानन्त जीव जन्म मरण करते रहते हैं उसमें कुछ ऐसे जीव हैं जो अपने योग्य पुरुषार्थ के द्वारा कर्म मल से

श्री श्री १०८ स्व० आचार्य महावीर कीर्ति जी महाराज

रहित होकर परमात्मतत्व को प्राप्त करने वाला है, ऐसे महात्मा जीव आज तक जो हो गये हैं, वे "परमात्मा", पूज्य कहलाये वे पवित्रात्मा को मुख्य रुप से २४ अवतार पुरुष माना है । वे विश्व के प्राणी मात्र को कल्याण का मार्ग बताकर अन्त मे परम पद को प्राप्त होते हैं। उन परम पद को प्राप्त हुए महा-पुरुषो में इस भरत क्षेत्र में (अवर्सपिणि तीसरे काल के अन्तिम मे आदि महा पुरुष ने अवतार लिया आपके अवतार लेने के पहले यह भरत क्षेत्र भोगभूमि सदृश था। यहाँ कल्पवृक्ष के प्रकाश से दिन रात का भेद नहीं था। उस समय सुर्य चन्द्र देखने मे नहीं आते थे। और जनता को खाने पीने ओढ़ने पह-नने की सामग्री अनायास उपलब्ध होती थी। किसी मनुष्य को तथा पशु पक्षियों को अपने जीवन निर्वाह के लिये कुछ भी परि श्रम नही करना पड़ता था।

यह भोगभूमि का समय काल के परिवर्तन से बदल कर कर्म युग हुआ। इस कर्म युग के प्रारम्भ मे १४ मनु या कुलकर हुए। ये मनु पूर्व मे विदेह क्षेत्र मे उच्च कुल मे राजकुमार थे। वे अपने व्रत नियम एव सतपात्र दान पूजादि से महान पुण्य बन्धकर मनुष्यायुष के बन्ध निमित्त आगे भरतक्षेत्र मे मनु हो जाते हैं। ये मनु जन साधारण की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान थे तथा जनता के परम हितैषी थे। इनके समय में मनुष्यों को जो उलझने आई उन उलझनों को इन मनुओ ने अपने विशेष ज्ञान बल से सुलझाया।

इनमे अन्तिम मनु नाभिराय की पत्नी मरुदेवी ने एक पुत्र रुप में वृषभदेव को जन्म दिया, उस समय युग लिया क्रम नहीं था। जन्म के पहले माता मरुदेवी को १६ स्वपन आये थे

तथा मरुदेवी के गर्भ में आने के दिन से ६ महिने तक देवताओं द्वारा रत्नों की वर्षा हुई तथा जन्म के ६ महिने बाद तक रत्नों की वर्षा होती रही। यह अतिशय तीर्थंकर महा पुरुषों को होता है तीर्थंकर वृषभदेव का इस कर्मयुग के आदि में जन्म होने से आपको युगादि पुरुष आदिब्रह्मा भी कहते हैं आप जन्म से ही दिव्यज्ञानी (अवधिज्ञानी) थे।

आपका विवाह सुनन्दा व नन्दा नाम की दो गुणवती कन्याओं के साथ हुआ था। आपके भरत, बाहुबली आदि सौ पुत्र व ब्राह्मी, सुन्दरी नामक दो पुत्रियां भी थी। आपने २० लाख पूर्व की आयु के बाद विवाह किया था। फिर ६३ लाख पूर्व आयु बीतने तक संसार के भोग विलास के बीच में रहकर जनता को असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, सेवा, शिल्प इन षट् कर्म का उपदेश दिया तथा जीवनोपाय करते हुए कर्म योगी बनकर रहे, आपने उस समय क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र इन तीनों वर्णों का भी निर्माण किया। आपको मनुष्य उस वक्त सृष्टिकर्ता आदि-ब्रह्मा आदि नाम से पुकारने लगे।

इस विश्व धर्म के मूल आधार रुप में भगवान वृषभदेव प्रथम तीर्थंकर हुये, आपके विषय मे अनेक मतों मे व अनेक रूपों में मान्यता दी गयी है। जैसे भागवत् पुराण (के स्कन्ध-२ अ० ७) मे लिखा है कि

नाभेरसौ वृषभ आप्तसुदेवसूनुः,
यो वै चचार समदृग योग चर्याम्।
यत्पारहंस्यमृषय- पदमानमंति,
स्वस्थ- प्रशान्तकरण परित्यक्तसंग ॥

"नाभि राजा के पुत्र भगवान् वृषभदेव हुये। आप समता पूर्वक योगाभ्यास करते रहे। ऋषियों ने जिनकी परम मुद्रा को देखकर, परमहस कहकर उस परमहंस पद को नमस्कार किया है, वे शान्त मुद्रा धारी इन्द्रिय विजयी, अपने स्वरूप मे स्थित सर्वसङ्ग त्यागी वृषभ हुए हैं"। जिनसे जो धर्म स्थापना की गयी है, वह जैन धर्म है। यह अनादि निधन जैन धर्म भगवान् वृषभनाथजी से प्रकाश मे लाया गया है इसी को Universal religion अर्थात् विश्व धर्म भी कहते हैं। कारण जैन धर्म का अर्थ —"कर्म जयतीतिजिनः— जिसने कर्मों को जीता है, वह राम हो, रहीम हो, तीर्थंकर हो, उन्हे जिन कहते हैं,

"जिनं उपासतीति जैन"-उन जिन या जिनेश्वर की जो उपासना करता है, वह जैन है। इस प्रकार विश्व व्यापक विष्णु, "विष्णुपासन करोतीति वैष्णव विष्णु-वेवेष्टि व्याप्नोतिभुवन त्रयमिति विष्णु।

जिस आत्मा की शक्ति विश्व मे व्यापक है वह विष्णु है। उन विष्णु भगवान की जो उपासना करता है, वह वैष्णव है।

जो भी बहुल ब्रह्ममय परमात्मा हुये हैं उनकी शक्ति मे कुछ भी तारतम्य नहीं है। वे विष्णु जिन, सिद्ध, बुद्ध, आदि अनत गुणो के भंडारी होने से उनकी इन्द्र ने १००८ नाम से स्तुति की है। उन भगवानो मे कोई मतभेद नहीं है। मोक्ष मे विवाद नहीं। मोक्ष मार्ग मे उस परमात्मा को मानने वाले भक्त साधु सज्जनो ने अपनी बुद्धि के अनुसार शास्त्र रचना कर मतभेद कर डाला है। इसलिये यहाँ अनेक स्वरूप वाले उस धर्म को मतभेद के निमित्त से समझने मे कठिनाई आने से अनेकान्त का

स्पष्टीकरणार्थ सप्तभंगी स्याद्वाद के द्वारा भगवान् तीर्थंकरों ने वस्तु तत्त्व का निरूपण किया है। जिसने अनादि निधन मिथ्या विवादो में नहीं पडते हुए स्याद्वाद के दृष्टिकोण को अपनाकर वास्तविक जिनोपदिष्ट मुक्ति मार्ग का खोज कर लिया था। उस भव्य जीव ने क्रमशः कर्म बन्धन से छुटकारा पाकर रत्न त्रय धारण कर शिव सुख के भागी होने में कोई संदेह नहीं रखा। जो ईश्वर तथा धर्म को किसी रूप में भी मानता है, और आस्था रखता है, वह आस्तिक है। जो किसी रूप में भी ईश्वर को व धर्म को नहीं मानता है, वह नास्तिक है। नास्तिक आत्मा में विश्वास नही करता हैं। आस्तिक यद्यपि मिथ्यात्व से ग्रस्त है तो भी उन्हें धर्म के प्रति, आत्मा के प्रति तथा ईश्वर के प्रति आस्था होने से कालान्तर मे वह भव्य जीव ईश्वरीय अनुभव नियम से प्राप्तकर अजर-अमर होगा।

महात्मा गांधी ने "To The Student" नामक किताब में कहा है कि—

There is an eternal struggle raging in man's breast between the powers of darkness and of light and he who has not the sheet anchor of prayer to rely upon will be a victim to the powers of darkness.

अर्थात्—अनादि काल से पाप वृत्ति व पुण्य वृत्ति में संघर्ष होता रहता है। और जिसे प्रार्थना रूपी लंगर का सहारा नहीं हैं, वे पाप वृत्ति के शिकार हो जाते हैं। गांधीजी के कहने के [illegible] जिसके अंदर ईश्वर के प्रति आस्था है, वही प्रार्थना [illegible] लंगर की सहायता लेगा। जो नास्तिक है वह ईश्वर के

स्तित्व को नहीं मानता है तो फिर प्रार्थना करने का भाव से होगा। इसलिए यहाँ ईश्वर के अस्तित्व मे आस्था आवश्यक है। गांधीजी ने कहा है कि—

God's existence cannot be, does not need to be proved God is If he is not felt so much the worse for The absence of feeling is a disease which we shall some days throw off nolens volens

अर्थात्—ईश्वर की सत्ता सिद्ध नहीं की जा सकती इसकी आवश्यकता भी नहीं हैं। ईश्वर है अगर इसकी सत्ता का अनुभव नहीं होता तो यह हमारे लिये दु ख की बात है इस अनुभव का नहीं होना एक मानसिक विकृति है। जिसे किसी न किसी दिन (हम चाहे या नहीं चाहे) हटाना ही पड़ेगा।

जो आस्तिक है वह केवल विश्वास के साथ भक्ति ही नही करता बल्कि भय भी रखता है। पहिले पहिले वह सामान्य तया पाँच पापों से (हिंसा, झूठ चोरी, कुशील, परिग्रह) डरता हुआ कहता है कि "यदि मै यह पाप करूंगा तो ईश्वर मुझ पर कुपित होकर मुझे शिक्षा देगा, "इस डर से, निर्मल आचरण से युक्त होकर जब वह ईश्वर की प्रार्थना करने लगता हैं, तब वह जीव ईश्वरीय ज्ञान से अनुभवित होने से ससार से भयभीत होता है। और ससार शरीर भोग से विरक्त हो जाता है। गांधीजी ने कहा है कि—

In my humble opinion fearlessness is the first thing indispensable before we could achieve anything permanent end real this quality is unattainable with-

out religions conciousness Let us fear God and we shall cease to fear man

अर्थात्—किसी शाश्वत एव सच्चे गुण की प्राप्ति के लिये मेरे तुच्छ विचार में निर्भयता अत्यावश्यक है बिना धार्मिक ज्ञान एव चेतना के इस गुण की प्राप्ति नहीं हो सकती है। हम भगवान से भय रखें तो मनुष्य का भय समाप्त हो जायगा।

इस प्रकार इस विश्व मे ईश्वर को मानने वाले अनन्तानंत भव्य जीव अनेक मत में है। किन्तु उनमें ईश्वर धर्म तथा आत्मा को जानने वाले विद्वान्गण बिरले ही हैं। इन तीनों को जान-कर श्रद्धापूर्वक आचरण करने वाले मुमुक्षु भी अति बिरले ही हैं।

इस विश्व में तीन प्रकार की आत्मा है। (१) बहिरात्मा (२) अंतरात्मा (३) परमात्मा। जो बहिरात्मा है ये आत्मा ज्ञान से शुन्य है। ये नास्तिक रूप में रहते हैं, और जो अंतरात्मा है, उनमें तीन भेद है। उत्तम, मध्यम, जघन्य। सातवें गुण स्थान से १२ वें गुण स्थान तक के शुद्धोपयोगी मुनिराज उत्तम अतरात्मा हैं। और जो देश व्रति तथा छटे गुण स्थान वर्ती मुनि मध्यम अंतरात्मा हैं। चौथे गुण स्थान व्रती अविरति सम्यग्दृष्टि श्रावक जघन्य अंतरात्मा हैं। और परमात्मा में दो भेद हैं, १ अरहंत सकल परमात्मा २. सिद्ध निकल परमात्मा।

इस संसार मे पडे हुए बहिरात्माओं को सचेत करने के लि महा पुरुषों के अवतार बार बार होते रहते हैं। भगवद्गीत में श्री कृष्ण महाराज ने अर्जुन को कहा है कि—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारता ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मान सृजाम्यहम् ।।

अर्थात-हे अर्जुन जव जव धर्म की क्षति होती है तव मै धर्म के उत्थान के लिये जन्म धारण करता हूँ इसका अर्थ यह नहीं है कि जो भगवान होने के वाद फिर जन्म लेगा। श्री कृष्ण का कहने का मतलव जव तक मैं ससार मे रहूँगा तव तक मै धर्म के उत्थान के लिये जन्म लूंगा क्योंकि जो भी महा पुरुष हैं उनके अवतार से धर्मात्मा जीवो को धर्मोपासना मे और सहारा मिलता है श्री कृष्ण नारायण अवतार पुरूष थे। आगे वे जैन मत के अनुसार १६ वें निर्मल नाम के तीर्थंकर होने वाले हैं। जो मुक्ति पाने पर फिर नहीं आते हैं, इस वात पर श्री कृष्ण महाराज ने कहा है कि—

कर्मजं वुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिण ।
जन्म वन्ध विनिर्मुक्ता पदं गच्छन्त्यनामयत् ।।

(गीता अ० २ श्लो० ५१)

वुद्धि पूर्वक किया हुआ कर्म के फल को त्याग कर. वुद्धिमान पुरूष जन्म मरण वन्धन से छुटकारा पाकर परमात्मा पद को प्राप्त कर लेते है।

इसलिये जो आगामी परमात्मा होने वालि वे पुण्य जीव जव जन्म धारण करते हैं, तब भव्य धर्मात्मा जीवो को धर्मोपासन मे सहायता मिलने से उन्हे भक्ति वशात् वर्तमान मे ही भगवान मानकर उपासना करते हैं। स्याद्वाद दृष्टि से भगवान् स्वरूप मानने मे दोष नहीं किन्तु भावी भगवान् को वर्तमान में भगवान्

मानना सम्यक्त्व मे दोष है। इस प्रकार अवतार पुरुषों का करते हुए प्रथम मे आदि प्रभु के विषय मे अन्य मत की व्यक्त करते हैं।

नाभिस्त्वजनयत्पुत्रं मरुदेव्या महाद्युतिम्
ऋषभं पार्थिवश्रेष्ठं सर्वक्षत्रस्य पूर्वजम् ॥५०॥
(वायु पुराण अ० ३३ पृष्ठ ५

नाभि राजा ने मरु देवी से महा कान्तिमान् पुत्र उत्पन्न किया जो समस्त क्षत्रियों का पूर्वज था।

इत्थं प्रभव वृषभोऽवतारः शिवस्य मे।
सतां गतिर्दीनबन्धुर्नवामः कथितस्तव: ॥
(अ० ४, श्लो०

अर्थात् शिवजी कहते हैं कि ऋषभ मेरे ही अवतार हैं दीनों के बन्धु हैं सत्पुरुषों को गति उनसे ही होती है।

ॐ त्रैलोक्य प्रतिष्ठितानां चतुर्विंशति तीर्थंकराणां ऋषभादि वर्धमानानां, सिद्धानां, शरणं प्रपद्ये:
(ऋग्वेद, अ०

अर्थात्—तीन लोक में प्रतिष्ठित ऋषभादि-वर्धमान चतुर्विंशति तीर्थंकरों की सिद्धों की शरण होता हूँ। यजुर्वेद मे कहते हैं।)

आतिथ्यरूपं मासरं महावीरस्य नग्नहुः।

रूपमुपसदामेतत्तिस्त्रोरात्रीः सुरासुता ।। १४ ।।

(अ० १ श्लो० ११)

अर्थात्—अतिथि मासोपवासी नग्न मुद्राधारक भगवान् महावीर की उपासना करो जिससे तीन प्रकार की अज्ञान अन्धकार रूपी रात्रि पैदा न हो। (आगे सामवेद मे कहते हैं)

स्वस्ति नः वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति म स्ताक्ष्यों अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ।।

(सा० अ० ६, ३ श्लो०

अर्थात्—वृद्धश्रवा आदि ऋषि लोग हमारे लिये कल्याण प्रदान करे। विश्वनाथ भी हमारे लिये कल्याण प्रदान करे। अरिष्टनेमि तथा बृहस्पति भी कल्याण प्रदान करे। (आगे अथर्ववेद मे कहते हैं।

अहोमुचं वृषभं यज्ञियानां
विराजतं प्रथममध्वराणाम्।
अपां नपातमश्विना हुं वे
धिय इन्द्रियेण इन्द्रियं दत्तमोज' ।।

अर्थात् याज्ञिको केमार्ग मे प्रथम शोभायमान को छुडाने वाले बुद्धि इन्द्रिय से इन्द्रिय को ओज प्रदान न करने वाले प्रभास पुराण में कहते हैं कि—

कैलासे विपुले रम्ये वृषभोऽय जिनेश्वरः।

प्रकार स्वावतारं च सर्वज्ञः सर्वत्रः शिव ॥५६॥

अर्थात्—विशाल रमणीय पर्वत पर सर्वज्ञ सर्व व्यापी शिवरूप भगवान् वृषभ जिनेश्वर अवतरित हुए। इस प्रकार वैदिक ग्रन्थों मे भगवान् वृषभ देव का अवतार एवं जगत को मोक्ष मार्ग दिखलाया हुआ तथा अपने आप मे मोक्ष जाने के पुरुषार्थ किये हुए वर्णन सैकड़ों प्रमाणों से विदित है। महाभारत, मार्कण्डेय पुराण, विष्णु सहस्र नाम स्तोत्र आदि मे प्रचुर प्रमाण के द्वारा वृषभदेव का उल्लेख है। हठयोग प्रदीपिका नाम के ग्रन्थ मे भी उन्हें योग विद्या का प्रारम्भ करने वाला बतलाया गया है। योग विद्या की परम्परा भगवान् आदिनाथ से प्रारम्भ हुई। भगवान् वृषभनाथ से योग विद्या मत्स्येन्द्रनाथ ने प्राप्त की मत्स्येन्द्रनाथ से गोरखनाथ को ज्ञान प्राप्त हुआ।

आदिनाथं च मत्स्येन्द्रं गोरक्षं गहिनीं तथा।
निवृत्ति ज्ञाननाथ च भूयो भूयो नमाम्यहम् ॥

यानी—आदिनाथ सकल ससारी जीवो के गुरु हैं उनका मुख्य शिष्य मत्स्येन्द्र है। मत्स्येन्द्र ने गोरख को बोध दिया। वही योग ज्ञान परम्परा से चला आ रहा है। अत उनको बार बार नमस्कार करता हूँ। आदिनाथ स्वामी के स्मरण पर मनु-स्मृति मे कहते हैं कि—

अष्टषष्टिषु तीर्थेषु यात्रायां यत्फल भवेत्।
श्री आदिनाथस्य देवस्य स्मरणेनापि तद् भवेत् ॥

अर्थात्—अड़सठ तीर्थों की यात्रा करने से जो फल होता है उतना फल भगवान् आदिनाथ का स्मरण करने से होता है। भगवान् आदि नाथ ने जनता को असि मसी आदि षट् कर्म तथा राजनीति युद्धकला मल्लविद्या नाटच गीत, संगीत आदि समस्त कलाएँ सिखलाई। समस्त स्त्री-पुरूषों को अपने पैरों पर खड़े होने योग्य बनाने से आपको प्रजाजन विधाता, आदिब्रह्मा कर्म युग निर्माता आदि नाम से पुकारने लगे। जब आप अपने ज्येष्ट पुत्र भरत को राज्य सौंपकर दिगम्बर मुनि हुए तब आपको योग मार्ग के प्रवर्तक, आदियोगी, आदिनाथ आदि नामों से पुकारने लगे। आपने नग्नता को धारण किया। जैनमत के बिना विष्णु पुराण मे भी स्पष्ट उल्लेख है !

अपने सर्वज्ञत्व के द्वारा प्रथमानुयोग करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग इन चार वेदो का उपदेष्टा होने से आपको चतुर्मुख ब्रह्मा भी कहते है। आपको ही नाभि से उत्पन्न चतुर्मुखी जग निर्माता ब्रह्मा मानना या समझना चाहिये। आपके सर्वाङ्ग से निकली हुई जो वाणी है, उसीको सरस्वती कहते हैं।

और भी आपके विषय मे वर्णन मिलता है कि आप रत्न-त्रय रुपी त्रिशूल से कर्म रुपी शत्रुओ का संहार करने से प्रलय-कर्ता destroyer कहा गया है। आपको कैलास पर्वत से मुक्त होनें से कैलासपति कहते हैं जो पर्वतवासी जनता के पूजनीय होने से पार्वतीपति कहते हैं। आपके दाहिने पैर के अँगूठे मे बैल का (वृषभ) चिन्ह होने से वृषभनाथ नाम से पुकारते हैं। मूर्ति मे भी वृषभ चिन्ह होता है आपके तपश्चरण काल मे बाल बढ जाने से जटाधारी तथा तपश्चरण समय वर्षा के पानी धारा

रूप सिर पर से प्रवाहित होने से गंगा आकाश से पृथ्वी गमन मानते हैं। साधु अवस्था मे नग्न होने से दिगंबर कहते हैं। तपश्चरण समय सर्प लिपट जाने से नीलकंठ कहते हैं। आपके पुत्र वृषभसेन प्रथम गणधर को गणेश नाम से पुकारने से महादेव (आदिनाथ) का पुत्र कहते हैं। इस प्रकार महादेव के समस्त विशेषण भ० वृषभनाथ से घटित होते हैं।

इस विश्व धर्म अहिंसा का मूल आधार वृषभनाथ ही है। अब आगे इस विश्व धर्म के अस्तित्व पर प्रकाश डालते हैं।

विश्व धर्म का अस्तित्व

आज इस भरत क्षेत्र के आर्य खण्ड में प्रचलित अनेक मत प्रमाणों से भी विश्व का अस्तित्व निर्णीत होता है। आज जैन मत में दो सम्प्रदाय प्रचलित है एक दिगम्बर दूसरा श्वेताम्बर इन दोनों सम्प्रदायों ने २४ तीर्थंकरों को विश्व धर्म के नेता रूप में स्वीकार किया है। और वे तीर्थंकर नग्न दिगम्बरत्व को धारण कर तपश्चरण के द्वारा केवलज्ञान को प्राप्त कर वीतरागी हुए वे विषय कषायों पर सच्ची श्रद्धा को न रखते हुये अपनी शक्ति को न छिपाते हुए, दिगम्बर साधु महाव्रतों को, श्वेतांबर साधु अणुव्रतों का पालन कर रहे हैं। इन दोनों सम्प्रदाय वालों को अगर विश्व धर्म (अहिंसा पर आस्था नहीं होती तो आज दोनों सम्प्रदाय देखने मे नहीं आते। इससे सिद्ध होता है कि आज इन दोनों सम्प्रदाय के आस्तिकत्व ही विश्व धर्म के अस्तित्व को प्रगट करता है। केवल वेष मात्र से, कोई महाव्रती य

अणुव्रती बनने मात्र से ही ईश्वरत्व को प्राप्त नहीं कर सकता है। मार्ग तो यही है किन्तु फल तो उस भव्य के परिणामों की निर्मलता के अनुसार ईश्वरीय अनुभव होने लगेगा। आज जो भी कोई सम्प्रदाय के मत भेद मे ही उलझता रहेगा चाहे वह कितना भी ऊँचा विद्वान या पुण्यात्मा क्यो न हो, वह वास्तविक विश्व धर्म के तत्व को प्राप्त नहीं कर सकता है। केवल वेश ही रह जायेगा, इस लिए हमे सच्चा अहिंसा धर्मी बनने की कोशिश करनी चाहिये। अब वैदिक सम्प्रदाय को देखते हैं तो उनमे भी अहिंसा तत्व मिलता है।

तुलसीदास जी ने रामायण के उत्तर काण्ड मे लिखा है कि—

सन्त उदय संतत सुखकारी
विश्व सुखद ज्यों इन्दुतमारी।
परम धर्म श्रुत विदित अहिंसा
परनिंदा सम अघन गरिसा॥

चौ० २१-२२

अर्थात्—सन्त उदय हमेशा सुखकारी होता है जिस प्रकार चन्द्र सूर्य संसार को सुख देते हैं। वेदों मे भी "अहिंसा परमो धर्म." कहा है अर्थात् किसी की निन्दा नहीं करना इसकेबराबर कोई पाप नहीं है। यहाँ निंदा को भी हिंसा मे शामिल किया है। क्योकि विना द्वेष के निंदा नहीं की जाती है। इसलिए विश्व धर्म का मूल तत्व भी यही है राग द्वेष मोह भी हिंसा के कारण हैं तुलसीदास जी अहिंसा तत्व को जानने वाले होने से कहते है कि "संत उदय संतत सुखकारी" इसलिये कहा है कि जिन संतों

के अन्दर राग द्वेष मोह नहीं है वही ज्ञानी संसारी जीवो के अन्दर राग द्वेषादि कलुषता को अपने सदुपदेश के द्वारा दूर करने मे समर्थ होते हैं। जैसे अहिंसा वादी संत वैदिक मत मे भी उपलब्ध होने से वैदिक मत मे भी विश्व धर्म का अस्तित्व प्रगट होता है। अब आगे बौद्धधर्म मे अहिंसा तत्व का अस्तित्व बताते हैं।

बुद्ध ने मज्झिम निकाय मे भगवान महावीर के उपदेश और सर्वज्ञता को स्वीकार किया है। गौतम बुद्ध के वचन और लंकावतार देखने से मालुम पडता है कि स्वय महात्मा बुद्ध ने मास नहीं खाया तथा अपने भक्त और साधुओ को भी सर्वथा त्याज्य और हेय बतलाया। पूर्व मे गौतम बुद्ध नग्नता को धारण करने के निमित्त से उनके ग्रन्थ मे भी नग्नता को महत्व दिया है और अहिंसा धर्म पर बहुत जोर दिया है। आज भी उनके अनुयायी अहिंसा धर्म का प्रचार करने वाले होने से विश्व धर्म का अस्तित्व प्रगट होता है। अब इस्लाम मत को देखा जाय तो उसमे भी कहीं भी अल्लाह को पशु पक्षियो को मारकर बलि चढाने की विधि नही मिलती है। उनके पूर्व मे भी मास मदिरा सेवन करने की पद्धति कुरान मे नहीं लिखी है आज भी कुरान के अनुसार चलने वाले उस अहिंसा वादी मुसलमानो के द्वारा विश्व धर्म का अस्तित्व सिद्ध होता है।

अर्थात ईसाई मत के अनुयायियो मे भी अहिंसा तत्व देखे जाते हैं। जिस समय यीशु को लकडी के क्रास पर लटका कर मार दिया गया उस समय उन्होने यही प्रार्थना की कि इन लोगो को क्षमा करना क्योकि ये बेचारे यह नहीं जानते कि वे क्या कर रहे हैं ? इससे सिद्ध होता है कि यीशु ने अपने को मारने वाले

पर भी क्षमा भावना की है, यह अहिंसा धर्म की भावना उनके हृदय मे कूट कूट कर भरी हुई थी। उन्होने बाइबिल नाम के ग्रन्थ मे कहीं भी मांस मदिरा सेवन की तथा किसी भी जीव को मारने की बात नहीं लिखी है। इस ईसाई मत मे भी विश्व धर्म का अस्तित्व पाया जाता है। उसके वाद हुए अत्र के संत कवीर महात्मा गाधी विनोवा जी आदि ने भी विश्व धर्म अहिंसा का प्रचार खूब किया है। आगे विश्व धर्म की मान्यता पर प्रकाश डाला जावेगा।

विश्व धर्म अहिंसा संबधी विभिन्न धर्मों की मान्यताएँ तथा दिगम्बरत्व का उल्लेख

प्रथम मे यहां देव की मान्यता वताते हैं—कालचक्र के क्रमानुसार इस पचम काल मे ऐरावत क्षेत्रवत् इस भरतक्षेत्र के आर्य खण्ड मे जगत के समस्त प्राणी मात्र के हितकारी विश्व धर्म अनेक मत रूप मे देखे जाते हैं। प्रत्येक मतावलम्बी भी देव, शास्त्र, गुरू इन तीनो को वरावर मान्यता देते हैं किन्तु मान्यता मे अन्तर है। अब प्रत्येक मत वाले, देव के प्रति किस प्रकार मान्यता रखते है इसका वर्णन करते हैं।

दिगम्बरत्व तथा उनकी मान्यता

जैनमत मे दिगम्बर जैनी कहलाने वाले नग्न मूर्ति की प्रतिष्ठा कर उसको वीतराग भगवान मानकर उपासना करते हैं। और २४ तीर्थंकरों को मुख्य रूप से और अन्य मुक्त जीवो को गौणरुप से पूजा करते हैं। इसका मतलव यह है कि मोक्ष मे कोई पदवी धारी का भेद नहीं है वहाँ सभी सिद्ध जीव बराबर सुख शक्ति वाले हैं। किन्तु जिसने तीर्थंकरत्व को प्राप्त किया है उनके द्वारा ससारी प्राणीयो को मोक्षमार्ग का सदुपदेश विशेष रूप मे प्राप्त होता है, केवल उपदेश ही नहीं वलिक अन्य भव्य जीव उपादान कारण के अनुसार निमित्त कारण (तीर्थंकर) को प्राप्त कर कई जीव मोक्ष भी प्राप्त करते हैं। तीर्थंकरो के समय मे ही अन्य शलाका पुरुष का अवतार होता है इसलिये २४ तीर्थंकरो को, णमोकारमन्त्र मे भी अरहन्त नाम से पहले नमस्कार किया है। पहले जगत के उद्धारक बनते है, बाद मे सिद्ध होते हैं।

श्वेताम्बरत्व तथा उनकी मान्यता

जैनमत मे श्वेताम्बर जैन कहलाने वाले २४ तीर्थंकरो को मानते हैं परन्तु उनकी मूर्ति बनाकर वस्त्राभूषणादि धारण कराके राज्यावस्था की पूजा करते हैं। परन्तु उनकी मान्यता मे भी अन्त मे इन सब वैभवों को त्याग कर दिगम्बरत्व को धारण करके ही मोक्ष जाते हैं। ये बात दिगम्बर सम्प्रदाय से बराबर मिलती है।

श्री श्री १०८ आचार्य धर्म सागर जी महाराज

वैदिक धर्म तथा अहिंसा

वैदिक मत मे भी २४ तीर्थंकरो की मान्यता की है परन्तु वे इन्हें गौणरूप में मानकर पूजते हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, को मुख्य रूप से मानकर पूजते हैं, और वे दिगम्बर मूर्ति की उपासना आज भी केसरियाजी, महावीरजी आदि स्थानों में जाकर करते हैं। इससे सिद्ध होता है कि वैदिक धर्म में भगवान २४ रूप मे माने गये हैं। श्री भगवत् पुराण मे भगवान आदिनाथ का वर्णन जैन ग्रन्थो से मिलता जुलता पाया जाता है, कुछ वैदिक लोग ब्रह्मा को सृष्टिकर्ता विष्णु को पालन कर्ता महेश्वर को प्रलय कर्ता मानते हैं, ये वास्तव मे कल्पना मात्र है। क्योंकि

भगवद् गीता मे श्री कृष्ण महाराज कहते हैं कि—

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफल सयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥ १४ ॥
नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृत विभुः।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तव. ॥ १५ ॥

भगवद् गीता अ० ५

अर्थात्—परमेश्वर भी भूत प्राणियो के न कर्तापन को न कर्मों को तथा न कर्मों के फल के सयोग को वास्तव मे रचता है किन्तु परमात्मा के प्रकाश से प्रकृति ही वर्तती है, अर्थात् गुण ही गुणों में वर्त रहे हैं ॥ १४ ॥

सर्व व्यापी परमात्मा न किसी के पापकर्म को और न किसी के शुभकर्म को भी ग्रहण करता है, किन्तु माया के द्वारा ज्ञान

ढका हुआ है, इससे सब जीव मोहित हो रहे हैं ॥ १५ ॥

और आगे कहते हैं कि—

ज्ञानेन तु तदज्ञान येषा नाशितमात्मनः ।
तेषामादित्यवज्ज्ञान प्रकाशयति तत्परम् ।१६।

अर्थात् जिनका वह अन्त करण का अज्ञान आत्मज्ञान के द्वारा नाश हो गया है, उनका वह ज्ञान सूर्य के सदृश उस सच्चिदानन्दघन परमात्मा को प्रकाशता है ॥ १६ ॥

इससे सिद्ध होता हे कि परमात्मा किसी कर्म का कर्ता नहीं है । अज्ञान से यह जीव अपने शुभाशुभ परिणाम के द्वारा बन्धा हुआ पुण्य पाप रूपी कर्म के फल को भोगता है ।

तुलसीदासजी रामचरित मानस मे कहते हैं कि—

कर्म प्रधान विश्व कर राखा,
जो जस कर्म करे तस ही फल चाखा ।

अर्थात्—विश्व मे कर्म प्रधान है जो जैसा कर्म करता है, उसको उसी रूप मे इस भव मे या आगामी भव मे भोगना ही पडता है । यदि वह जीव ईश्वर के शासन का उल्लघन नहीं करते हुए अहिसा धर्म को अपने अन्दर उतारता है तो वह ईश्वर के निमित्त से कर्म रहित ईश्वर को प्राप्त हो सकता है ।

इस विषय मे बैरिस्टर चम्पतराय कहते है कि—

Destiny is not made for man man makes it for himself Every one is the maker of his own des

iny As you sow shall you reap. No one can absolve you from the concequences your actions

अर्थात्—प्रारब्ध मनुष्य के लिये बनाया नहीं जाता वह इसका कर्ता है। प्रत्येक व्यक्ति स्वय ही अपने भाग्य का विधाता है जैसा बीज आप बोयेंगे वैसी ही आप फसल काटेंगे। कोई भी आपको पाप या पुण्य कर्मों के फल से मुक्ति नहीं दिला सकता या मुक्त नहीं कर सकता इससे यह सिद्ध हुआ कि ईश्वर किसी को भी सुखी दु खी नहीं बनाता है। यदि कोई ईश्वर की भक्ति श्रद्धा एव विश्वास से विमुख है तो वह नास्तिक कोई भी मत वाले क्यो न हो, नियम से ससार मे भटकता रहेगा परन्तु जो ईश्वर के तथा धर्म एव आत्मा की श्रद्धा आदि से युक्त है, वह आस्तिक भव्य जीव किसी भी मत मे क्यो न हो वह एक दिन समय पाकर ईश्वर के सन्निकट पहुचकर ईश्वरत्व को प्राप्त करता है।

जैन धर्म की मान्यता

वास्तव मे विश्व धर्म का सिद्धांत यह कहता है कि किसी भी ब्रह्मा ने इस जगत मे दिखने वाले जीव और पुद्गल आदि ६ द्रव्य का निर्माण नहीं किया है। कृत युग मे जनता को जीवनोपाय एव आत्म कल्याण का मार्ग दर्शक होने से आदि होने से आदि ब्रह्मा को सृष्टि कर्ता कहा गया है।

एक फिलासिफर कहते हैं कि—

The universal religion is not a code of capricious commands It is a scientific synthesis of knowledge

relating to the cosmos, soul, matter, immortality and Godhood It does not believe in a creator, protector and destroyer of the universe. The universe is beginningless and endless It was not created at any particular time It was there It is here, and it will be for all time to come If some people argue that if there is no cause there is effect The answer given by the jaina acharyas, is that if god had created the world Taking again the cause effect theory who created the world in which god existed ? he could not have been in a vaccum There will be another question who created god ? The famous saying "Beeja vriksha Nyaya" Applies to the also : Which is first, whether the tree or seed ? Jainism says this tree is beginingless and the seed also is beginingless and this is the best possible answer that a philosopher could give

अर्थात्—जैन धर्म अस्थिर नियमो की एक संहिता नहीं है। जैन धर्म ससार, आत्मा पुद्गल, अमरत्व तथा ईश्वर सम्बन्धी ज्ञान का वैज्ञानिक सकलन है। यह अध विश्वासों पर आधारित मत नहीं है जेनधर्म किसी ऐसे ईश्वर मे विश्वास नहीं करता जो इस विश्व का निर्माता हो, रक्षक हो, तथा नाश करने वाला भी हो। यह ससार तो अनादि और अनंत है। इसका निर्माण किसी निश्चित समय पर नहीं हुआ। यह पहले भी था, अब भी है, और सर्वदा रहेगा। यदि कुछ लोग यह कहे कि बिना कार्य

के कारण नहीं हो सकता तो जैन आचार्यों का उत्तर है कि यदि ईश्वर ने इस ससार को वनाया तो इस दुनिया को बनाने से पहले वह ईश्वर कहाँ था ? कारण कार्य सिद्धान्त को फिर से लेवें । इस दुनिया का निर्माण किसने किया जिसमे कि ईश्वर रहता था । क्योंकि ईश्वर शून्य मे तो रह नहीं सकता था । एक दूसरा प्रश्न उठता है कि ईश्वर को किसने वनाया ? इस विषय मे भी "बीज वृक्ष न्याय" की उक्ति लागू होती है । कौन पहिले हुआ ? बीज अथवा वृक्ष ? धर्म का कथन है कि वृक्ष और बीज दोनो ही अनादि है, अनन्त हैं,

यही सबसे उत्तम उत्तर है जो एक दार्शनिक दे सकता है:- यहाँ पाश्चात्य विद्वान भी जैन धर्म के तत्व का समर्थन करते हुये कहते हैं कि इस प्रपञ्च का और इस जीवात्मा का कोई सृष्टि कर्ता नहीं है इसको अनादि निधनत्व सिद्ध किया है । इसी प्रकार विष्णु भी किसी को सुखी व किसी को दु खी नहीं वनाते हैं यह तो उस जीवात्मा का किया हुआ पूर्वाजित कर्म हो कारण है । विष्णु विश्व व्यापक है कल्पना रूप नहीं है, वे तो हर जीवो को समान दृष्टि से देखने वाले हैं । जिसके अन्दर सब जीवो के प्रति समता भाव प्रगट हुआ है वही उस विष्णु को प्राप्त कर सकता है । इसीं प्रकार महादेव को प्रलय कर्ता मानना असंगत है । पूर्व मे कहा गया है कि ईश्वर कर्माष्ट का लयकर्ता है । वास्तव मे जो ईश्वर होते हैं वे जगत के प्राणी मात्र पर दया करने वाले होते हैं । वे कभी नाशक नहीं बनते हैं और यह भी गलत है कि ईश्वर को दुष्ट संहारक शिष्ट परिपालक माने । क्योंकि ईश्वर मे रागद्वेषादि विकार भाव नहीं होने से उनकेलिये सभी समान हैं । रागी द्वेषी ईश्वर नहीं होते आज

के विद्वानों ने ईश्वर के प्रति कई मतों का आरोपण कर मतभेद किया है। किन्तु भगवद् गीता रामायणादि प्राचीन ग्रन्थों से यह विदित होता है कि जिसने इन्द्रिय और मन को जीता है, वही परमात्मा है, वह महात्मा ही समय पाकर परमात्मतत्व को प्राप्त होते हैं इसलिए वैदिक मत मे भी ईश्वर के वीतरागता को स्वीकार किया है।

बौद्ध धर्म की मान्यता

अब बौद्ध मत मे भी २४ बुद्ध माने गये है, उसमे गौतमबुद्ध से पहले २३ बुद्ध हो गये ऐसा मानते हैं, किन्तु उनका नाम निर्देश नहीं किया है इससे यह सिद्ध होता है कि वृषभादि २३ तीर्थंकरो को गौतमबुद्ध ने बुद्ध नाम से उच्चारण किया है

भगवन् सहस्रनाम स्तोत्र मे लिखा है कि—

शुद्धो बुद्धः प्रबुद्धात्मा सिद्धार्थं सिद्धशासन ।
सिद्ध सिद्धान्त विद्ध्येय सिद्ध साध्यो जगद्धित ।१०।

अर्थात्—यहाँ शुद्ध बुद्ध प्रबुद्धात्मा सिद्धार्थ आदि नाम है ये सब उन भगवान के पर्यायवाची शब्द हैं। कन्नड कवि रत्नाकर भी अपनी कविता से मतभेद के भ्रम को दूर करते हुये अनेक नामो से उन वीतराग देवो की स्तुति की है वह नाम इस प्रकार है कि—

त्रिजगत्स्वामि जिनेन्द्र सिद्ध शिवलोकाराध्य सर्वज्ञ शम्भु जगन्नाथ जगत्पितामह हर श्रीकान्त वाग्गीश विष्णु जितानग-

जिनेश पश्चिमसमुद्राधीश्वरा वेगदिं निजम तोऴ दयालुवेतलुविदे रत्नाकराधीश्वरा ।। १२६ ।।

तीन लोक के प्रभु जिनेश्वर सिद्धि को प्राप्त हुए हैं। सिद्ध क्षेत्र मे रहने वाले पूज्य समस्त विषयों को जानने वाले, सुख के मूल उत्पत्ति स्थान रूपी, लोकाधिपति लोक के पितामह, कर्म शत्रुओ को नाश करने वाले सुज्ञान सम्पत्ति के स्वामी सरस्वती के प्रभु ज्ञान से सर्व व्यापी, काम विजेता, कर्म को जीतने वाले ऽ भ पश्चिम समुद्राधिपति आप हैं। हे रत्नाकराधीश्वर शीघ्र ही यथा स्वरूप का दर्शन कराओ, हे दयामय, अब देरी न करो। यहाँ रत्नाकर ने शब्दो के वास्विक अर्थ को प्रगट किया है। आज चार अक्षर का ज्ञाता पण्डित कहलाने वालो ने हर श्री-कान्त, वाणीश शब्द पर काल्पनिक रचना कर लोगों को भ्रम मे डाल दिया है। कोई भी भगवान, पार्वती, लक्ष्मी, सरस्वती नाम की स्त्री के साथ नहीं रहते हैं। ऐसी बातो को बनाकर लोगो को भ्रम मे डाले हुए उन पडितो को देखकर हमे सन्त कबीर का दोहा याद आता है।

पढ़ पढ़ के पंडित भयो ज्ञान भयो अपार।
आतम की सुध न भई नकटी का श्रृंगार।।

पडित का अर्थ मूलाराधना पृ० १०५ मे बताया है कि—
"पडा हि रत्नत्रय परिणाता बुद्धि"।

अर्थात रत्नत्रय धर्म धारण करने की जो बुद्धि है, वह पडा है। उस बुद्धि से अलकृत व्यक्ति पंडित है। (आगे ऐसे पडित के आभरण को पडिता भरण कहा है) आज साधुओ मे

ओर गृहस्थो मे ऐसे आत्मज्ञानी पडितों की कमी से ही समाज समाज मे मत मतातर हो रहा है। कुछ विरले ही रत्नत्रय परिणाम वाले साधु और श्रावक स्वपर कल्याण मे प्रयत्नशील हैं किन्तु ऐसे सज्जन पुरुषो की पूछताछ कम हो गई उल्टा वदमाम करने मे और किसी न किसी रूप मे अवहेलना करने की ईर्ष्याबुद्धि ही बढती जा रही है, उनमे गुणग्राही बनने का लक्ष्य नहीं है। "विनाश काले विपरीत बुद्धि" होने का मूल कारण मिथ्यात्व का तीव्र उदय एव कुसंस्कार वशात अनेक मत भेद पक्षपात से रूढिवाद मे ही भटक रहे हैं।

यह तो सिद्ध है कि अपने स्वाभिमान पूर्वक श्रद्धा विवेकी तथा क्रिया से विचलित नहीं होते हुये अनेक सकटो का सामना करते हुये साधना पथ पर अडिग रहने वाले मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका इस पचम काल के अत तक रहेंगे यह सिद्धान्त है। वास्तविक अहिसा तत्व को समझने वाले यह चतुर्विध सघ विरले होते हुए भी सद्गति के पात्र है। किन्तु आत्म कल्याण के पथ पर न चलकर समाजवाद रूढिवाद के पंथ पर चलने वाले गाँठ की पू जी तो खायेंगे अपितु छठवा काल के दु.ख के भोगी भी नियम से होगे। यहा स-त कबीर ने कहा है कि-

वाट विचारे क्या करे पंथी चले न सुवार।
सीधा रास्ता छोडकर चलत उजार उजार॥

अर्थात् इसका सारांश यह है कि मोक्ष मार्ग सीधा है, परन्तु पंथ के विवाद से लोग इधर उधर भटकते हैं। क्योंकि शान्ति साधक धर्मानुरागी ही राग द्वेष निवृत्त रूप सद्गति के पात्र है

अपितु ख्याति प्राप्त साधक विषयानुरागी तो रागद्वेष प्रवृतिरूप दुर्गति के पात्र है। यहाँ प्रकरण मे बौद्धो की ईश्वर के प्रति मान्यता कैसी है कि बौद्ध धर्म के संस्थापक गौतम बुद्ध के पहले २३ तीर्थंकरों की सर्वज्ञता स्वीकार करते हुए न्याय बिन्दु ग्रंथ के अ० में लिखा है कि—

यः सर्वज्ञ आप्तो वा सज्योतिर्ज्ञानादिकमुपदिष्टवान्।
यथा वृषभवर्धमानदिरिति ॥

अर्थात्—जो सर्वज्ञ या आप्त हुआ है उसी ने ज्ञान आदि का उपदेश दिया है। जैसे वृषभ वर्धमान आदि। इससे सिद्ध होता है कि वृषभादि २३ तीर्थंकरों को ही २३ बुद्ध मान कर उपासना करते हैं। इस प्रकार बौद्धो में ईश्वर मान्यता पाई जाती है।

ईसाई मत तथा उसकी मान्यता

अब ईसाई मत पर विचार किया जाय तो—हजरत ईसा ने मरते समय कहा था कि—

"तलित कुमी ऐलाई ऐलोई लामा साधाक्थेन"

अर्थात अपने को फाँसी देने वाले के प्रति भगवान् से क्षमा प्रार्थना की थी। और अपने मत प्रचार के समय वे कहते थे कि "आत्म श्रद्धानी बने" अपनी आत्मा को समझे और विश्व प्रेमी बनें इन तीनों मान्यताओं से मालुम पड़ता है कि महात्मा योशु जैन सिद्धान्त को भी जानते थे इसलिए उनकी बाईबिल ग्रन्थ

के उत्तरार्द्ध में भी अहिंसा धर्म का प्रचार कई प्रमाणों से प्रस्तुत किया गया है। ईसा ने विवाह नहीं किया था। वे बाल ब्रह्मचारी रहे।

अरब में तीन मतो की स्थापना हुई (१) यहूदी (२) ईसाई (३) इस्लाम। इन तीनो मे प्राचीन यहूदी धर्म है। इसके सस्थापक हजरत मूसा थे। बाइविल के प्राचीन पूर्व अश को यहूदी प्रमाण मानते हैं वाइवल का उतना ही अंश इनका धर्म ग्रन्थ है। हजरत ईसा हजरत मूसा से पिछे हुए हैं। उनका उपदेश बाइबल का उत्तरार्द्ध अश है यहूदी धर्म का ही नवीन परिष्कृति रूप ईसाई धर्म है। इस्लाम धर्म की स्थापना ईसाई मत से लगभग ५०० वर्ष पीछे हजरत मुहम्मद द्वारा हुई थी। जिस तरह हजरत ईसा ने भारत मे आकर जैन साधु से शिक्षा गहण की थी, उसी तरह यहूदी धर्म भी जैन धर्म से प्रभावित है। यह प्रमाण मिलता है कि प्राचीन यहूदी लोग भारतीय इक्ष्वाकुवशीय जैन थे। जो जुदिया मे रहने के कारण (यहूदी) जहूदी कहे जाने लगे थे। इस ऐतिहासिक कथन से भी यहूदी धर्म का मूल जड जैन धर्म है।

इस्लाम धर्म और उसकी मान्यता

जिस प्रकार बौद्धो मे २४ बुद्ध माना है, उसी प्रकार फारसियो मे २४ अहूर नाम से मान्यता की है। बेबिलोनिया के आदि वासियो ने २४ मार्ग दर्शक देवता माना है। यहूदियों मे भी २४ पूज्य महा पुरुषो के रूप मे मान्यता की है। यह बात

बैरिस्टर चपतराय लिखित वृषभ देव नाम के ग्रन्थ में प्रगट की गई है। इस्लाम मत मे भी ईश्वर के प्रति मान्यता देखी जाय तो अरब देश में मक्का एक प्राचीन नगर है।

इस नगर में पहिले जैन धर्म का अस्तित्व था। कवि रत्ना कर ने भरतेश वैभव मे लिखा है कि:—

लेक्कविल्लद मंदिगूडि नेगलदोंदु
टिक्केयनेत्ति गाडियोलु।
मक्क देशद राय बदु कै मुगिदोंदु
विक्किनोलगे सार्दिविदा।।

अर्थात्—मक्का देश के राजा ने आकर हाथ जोड़कर नम्रता से भरत चक्रवर्ती का स्वागत किया उस समय स्वागत के लिए गाडियो मे आई हुई जनता की गिनती ही नहीं थी। उस समय जैन मन्दिर विद्यमान था और जैनमत के लोग वहाँ रहते थे। कालांतर मे हजरत मुहम्मद ने वहाँ जाकर इस्लाम धर्म का प्रचार किया। फिर जैन मन्दिरो को तोडकर मस्जिद बनाई गई। आज जो मस्जिद वहाँ पर है उसे बावन चैत्यालयों के अनुरुप बताते हैं। महुआ के दूरदर्शी श्रावक लोगो ने मक्का मे स्थित मूर्तियां लेजाकर अपने नगर मे प्रतिष्ठित कराली अब मक्का मस्जितो की बनावट जैन मन्दिरजै सी है। मुहम्मद गौरी और औरंगजेब ने अपने शासन काल मे जैनी तथा हिंदुओ की मूर्तियों व मन्दिरों मे बहुत तोड़ फोड़ की।

एक बार मैसूर राज्य के शासक टीपू सुलतान ने अपने

शासन काल में जैनियो को मूर्ति पूजा करना मना कर दिया था जब जैनी नहीं माने तब अपनी तलवार से कार्कल के बाहुबलि की मूर्ति के अगूठे पर मार दिया। जब अगूठे से खून की धार वह निकली तब सुलतान तोबा, तोबा कहते हुये भागा। तब फिर उस मूर्ति को साक्षात आदम मानकर पूजा करने की अनुमति दी। पत्थर से खून की धारा वह निकली ? यह चमत्कार शासन देवी देवता का ही है। आज भी जहां देवी देवताओ का आवागमन है वहा अनेक प्रकार के चमत्कार देखे जाते हैं। और उस स्थान मे कोई अनर्थ नही होने देते हैं। इस प्रकार औरंगजेब को भी मस्जिद मे देवताओ के चमत्कार दिखाने पर उसने फिर मूर्ति आदि की तोड फोड करना छोड़ दिया।

संत कबीर को हिन्दू मुस्लिम दोनों मानते हैं। दोनों एक बार कबीर के पास न्याय कराने के लिए आये। वह न्याय मूर्ति पूजा के विषय मे था। तब कबीरदास जी कहते हैं कि—

कबिरा बुत का पूजना ज्यों गुडिया का खेल।
जब पाया प्रिय आपना गुडिया धरी समेट॥

और भी कहा है

दासोऽह रटता चला प्रभु मंदिर के पास।
दर्शन कर 'दा' मिट गया सोऽह रहा प्रकाश॥

अर्थात्—जब तक विवाह का समय आता है तब तक बाल्य अवस्था मे लडके व लडकियां गुडियो का खेल खेला करते हैं। इसी प्रकार जब तक जिनको अपनी आत्मा मे रहने वाली पर-

मात्म शक्ति प्रकट नहीं होती तब तक भक्त जन उस ईश्वर की मूर्ति बनाकर उपासना करते हैं। आगे ईश्वरत्व प्राप्त होने पर मूर्ति पूजा अपने आप छूट जाती है। आगे के दोहे मे लिखा है कि—पहले मैं दास हूँ और आप स्वामी। ऐसा बोलकर भक्त उस ईश्वर की मूर्ति के सामने प्रार्थना करता है। जब स्वानुभूति प्रगट हुई तब दा नहीं बोलता है, जो आप है, वही मैं हूँ ऐसा कहकर अपने मे लीन हो जाता है। यह बात जैन धर्म से बराबर मिलती है। जैन सिद्धान्त के अनुसार वीतराग की मूर्ति का दर्शन एवं पूजन, सम्यग्दर्शन के कारण है। जब दर्शन सम्यग् होगा तो ज्ञान भी सम्यग् होगा। ज्ञान के साथ विज्ञान के निमित्त से स्वरूप की अनुभूति के वशात् स्वरूपाचरण चारित्र भी होता है, क्योंकि इन तीनों मे अविनाभाव सम्बन्ध है।

इस्लाम मतानुसार सृष्टि के आदि मे एक ही मनुष्य जाति थी, मनुष्यों को सन्मार्ग पर चलाने के लिये बाबा आदम ने धर्म उपदेश दिया। भ० आदिनाथ का अपभ्रंश शब्द "आदम" है इस्लाम ग्रन्थों मे बतलाया है कि नबी का बेटा रसूल था। जिसको खुदा (परमात्मा) ने ईश्वरीय उपदेश जनता तक पहुंचाने लिए पैदा किया। यहाँ नबी शब्द का नाभि, रसूल शब्द वृषभ का तथा आदम शब्द आदिनाथ का अपभ्रंश है। और यह भी कहते हैं कि बाबा आदम हिन्दुस्तान मे पैदा हुए (मेराजुलबूत किताब मे) इस्लाम मत में प्रचलित उनकी भाषा

के कुछ शब्दों का अर्थ इस प्रकार है कि—

नबी – ईश्वर के सन्देश को स्पष्ट तथा विवरण करने वाला।
मुहम्मद—ईश्वर के सन्देश को प्रेषित करने वाले का नाम।
तोबा—(पश्चाताप) बुरा काम होने पर परिताप करना।

शैतान—आज्ञा नहीं पालने वाला। मदीना—मधुवन।
रहमान—(कृपावान) जो मांगने पर देता है।
रहीम—दयालु, फकीर, दिगम्बर।

मक्का मे ये लोग २४ पैगम्बर मानकर चरण चिन्ह को नमस्कार करते हैं, गिरनारजी मे ५ वें टोंक में आकर आदम का चरण मानकर करते हैं। ये लोग जैनी-सामायिक करने के समान घर मे तथा मस्जिद मे जाकर (नमाज) पढते हैं। इनमे भी शेख, सैय्यद, मुगल, पठान, आदि चार जातियां है।

यह लोग चन्द्रमा को अल्लाह का निवास स्थान मानकर पूजते हैं। वास्तव मे यह जैन सिद्धान्त से मिलता जुलता हैं। जैसे कि सिद्ध शिला भी अर्द्ध चन्द्राकार रूप है इस सिद्धशिला के उपर सिद्धो का आवास है। और ६ द्रव्यों को जानकर ७ तत्वों का मनन कर आठ कर्मों से रहित जब यह जीव होगा तब वह अल्लाह के सानिध्य मे पहुचकर निराकार रूप को प्राप्त होता है। जैन लोग भी नित्य, निरजन, निराकार रूप को मानते हैं।

कबीर ने कहा है कि—

ईश्वर अल्लाह तेरे नाम,
सबको सन्मति दे भगवान।

हे ईश्वर आप अल्लाह आदि नाम से भूसित हैं, हे भगवान, आप सबको सद्बुद्धि दीजिये।

इस प्रकार हर मत मे ईश्वर के प्रति श्रद्धा विश्वास एवं

मान्यता दी गई है। वास्तव मे देखा जाय तो हर मत में आत्म हिताभिलाषी भव्य जीव विद्यमान है। जैनाचार्यों ने सम्य क्त्व प्रकरण पर कहा है कि—

दैवात् कालादि सल्लब्धौ प्रत्यासन्ने भवार्णवे।
भव्य भावा विपाकाद्वा जीवा सम्यक्त्व मश्नुते ॥

अर्थात्—भाग्य अनुकूल होने पर काल लब्धि सन्निकट होने पर, भव रूपी तट पास मे आ जाने पर और भव्यत्व रूपी भाव पक जाने पर इस जीव को सम्यक्त्व प्राप्त होता है। यह चारों कारण जिस जीव को प्राप्त होते हैं वह जीव किसी भी गति मे बाह्याभ्यन्तर परिग्रह से छूटकर ईश्वरत्व को प्राप्त हो जाते हैं जो कर्म मल से अलिप्त हुए उन्हीं जिनदेव के ज्ञान मे सम्पूर्ण विश्व के पदार्थ झलकते हैं। उन जिनदेव को ही अनेक मतों के प्रवर्तकों ने अनेक नामान्तर करके मान्यता की है। अन्त मे सब भव्य को मतभेद एवं विकारी भाव को त्याग कर जिन बनना पड़ेगा। यह जिनत्व प्राप्त करने की योग्यता निगोदिया मे भी है। किन्तु जब तक उस जीव को मनुष्य गति प्राप्त नहीं होगी इस मनुष्य गति मे भी विश्वधर्म अहिंसा को अपने अन्दर उतारने की योग्यता जब तक प्राप्त नहीं है तब तक इस संसार में भटकना पड़ता है।

जैन मतानुसार परिग्रह संबंधी विवेचन

जैनमत मे विश्वधर्म के विपरीत हिंसा का मूल कारण २४ प्रकार के परिग्रह बताया है। अन्य मत में अहिंसादि ४ व्रत के विश्लेषण तो मिलते हैं। वल्कि ५ वां परिग्रह त्याग महाव्रत का तथा अन्य परिग्रहो का विषय स्पष्टिःकरण नहीं पाया जाता है, यहां उन परिग्रहो का परिज्ञान होना आवश्यक है। क्योंकि जब तक इनका स्वरूप नहीं जानेंगे तो आत्मानुभूति कठिन है।

मिथ्यात्व वेद हास्यादि षट् कषाय चतुष्टयः।
अंतरंग जयेत्संगं प्रत्यनीकं प्रयोगतः॥
क्षेत्रं वास्तुं धनं धान्यं द्विपदं च चतुम्पदं।
यानं शय्यासनं कुप्यं भाण्डं चेति वहिर्दशः॥

अर्थात्—आचार्यों ने प्रथम मे मिथ्यात्व को परिग्रह बताया है। क्योंकि इस मिथ्यात्व के निमित्त से आत्मा की स्वानुभूति प्रगट नहीं होती है इसके बाद स्त्री वेद पुरुष वेद नपु सक वेद हास्य, रति, अरति शोक, भय, जुगुप्सा, क्रोध, मान, माया, लोभ ये चौदह अतरंग आत्मा से लिप्त परिग्रह हैं। और जमीन मकान धन, धान्य, सेवक, गाय, भैंस हाथी घोडा आदि पशुओं को रखना, मोटर, गाड़ी आदि वाहन रखना सुख, शय्या आसन वस्त्र, सोना, चाँदी आदि और वर्तन वगैरह ये बाह्य दस प्रकार के परिग्रह है। मोक्षगामी-जीव प्रथम मे बाह्य परिग्रह का त्याग करते हैं। कारण इनके निमित्त से अतरग मे संकल्प विकल्प रूपी लहरें उठती रहती हैं। वास्तव मे मूर्च्छा ही परिग्रह है।

यद्यपि सम्यक्दृष्टि के मूर्च्छा नहीं होती तो भी चारित्र मोह-नीय के निमित्त से उसको आत्मा का चितवन, मनन होने मे ये बाह्य परिग्रह बाधक है।

इसलिए चारित्र मोहनीय के क्षयार्थ ही उन्हें मुनिलिंग धारण करना पडता है। किसी किसी को गिरिकदरादि मे रह कर चिरकाल तक तपश्चरण करना पड़ता है। और किसी को मुनि होते ही अन्तर्मुहूर्त मे सर्वज्ञत्व प्राप्त हो जाता है। तो उस जीव का उपादान की योग्यता पर ही निर्भर है यह तो निश्चय है कि मुनिलिंग बिना चारित्र मोहनीय का क्षय नहीं हो सकता है। इसलिए जैनमत मे दिगम्बरत्व को बहुत महत्व दिया है। आत्मा मे परमात्मा बनने की शक्ति है, किन्तु जब तक साधक साधन से उत्तीर्ण नहीं होगा तब तक साध्य नही होगा।

एक फिलासिफर ने कहा है कि—

No difference between God and us.
More difference between God and us.

अर्थात्—ईश्वर मे और हम मे कोई अन्तर नहीं है आत्मा की दृष्टि से हमारी आत्मा कर्म से युक्त होने पर ईश्वर कर्म से रहित होने से, ईश्वर मे और हममे बहुत अन्तर है।

सारांश यह है कि वीतरागी ही सच्चे देव है। जिनको आत्मा मे उपस्थित विकारो को जीतना है तो उन्हे वीतराग देव की उपासना ही श्रेयस्कर है।

अब आगे सच्चे गुरू का लक्षण बताते हैं कि—

विषयाशा वशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः।

ज्ञानध्यान तपोरक्तस्तपस्वी सः प्रशस्यते ।।

यहा पर श्री स्वामी समन्तभद्राचार्य कहते हैं कि जिन्होंने विषय वासना को जीता है, और जो आरम्भ परिग्रह से रहित है, व ज्ञान ध्यान तपश्चरण मे हमेशा लीन रहते हैं वे साधु ही वास्तव मे प्रशसनीय है। मतलब सच्चे गुरु के लक्षण उनमें पाये जाते हैं इसलिए वे वदनीय हैं। आचार्यों ने सिद्धान्त की बातें इस प्रकार प्रगट की है।

(१) अरिहत देव (२) निर्ग्रन्थ गुरु (३) सिद्धान्त शास्त्र (४) दयामूल धर्म। इससे स्पष्ट है कि निर्ग्रन्थ यानी परिग्रह रहित जिसने २४ प्रकार के परिग्रह का त्याग किया है वे ही सच्चे निर्ग्रन्थ हैं उन्हे दिगम्बर भी कहते हैं।

जैन मतानुसार दिगम्बरत्व का परिचय

आचार्य उमास्वामी के कथन से जैनमत मे पुलाक, बकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ, स्नातक, ये पाँचो सम्यग्दृष्टि मुनि होते हैं इनमे स्नानक सर्वज्ञ केवली होते हैं। यह मुनिधर्म मोक्ष का द्वार है।

दिगम्बरत्व उस धर्म की कुञ्जी है।
दिगम्बरत्व प्रकृति का रूप है।

अर्थात्—दिशायें ही उनके अम्बर है, वस्त्र विन्यास ही उनका वही प्रकृतिदत्त नग्नत्व था। मनुष्य मात्र की आदर्श स्थिति दिगम्बर ही है। आदर्श मनुष्य सवथा निर्दोष है विकार

शून्य होता है ।

इस विषय पर शुक्राचार्य का दृष्टान्त देते हुए कहते हैं कि एक बार शुक्राचार्य नग्नावस्था मे विहार कर रहे थे। उस रास्ते के एक तालाब मे कई कन्याएँ वस्त्र रहित स्नान कर रही थी। उन कन्याओ ने नग्न आचार्य को देखकर कुछ भी क्षोभ नहीं किया। थोडी देर बाद आचार्य के पिता भी उसी रास्ते से आ निकले उनको देखते ही कन्याओ ने झटपट अपने कपड़े पहन लिये। मतलब यह है कि एक नग्न युवा को देखकर तो उन्हें ग्लानि और लज्जा नहीं आई किन्तु एक वृद्ध को देखकर शर्म आ गई। इसका कारण नंगा साधु अपने मन मे भी नंगा था। क्योकि उसके दिल मे विकार नहीं था। परन्तु वृद्ध पिता तो विकार के सहित होने से वस्त्र से भी युक्त था। वास्तव में दिगम्बरत्व सदाचार एव निर्विकार अवस्था का द्योतक है जिस प्रकार बालक के लिए स्त्री मात्र विकार भाव के कारण नहीं बनते हैं। उसी प्रकार साधु अपने ज्ञान भाव से समस्त स्त्री मात्र को देखकर भी विकारी नहीं बनते हैं। विकारी होना दिगम्बरत्व के लिये कलङ्क है। विकार को जीतने के लिये ही दिगम्बरत्व को धारण करना है। आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी कहते हैं कि—

णग्गो पावइ दुक्ख णग्गो संसार सागरे भमई ।
णग्गो न लहई बोहिं जिणभावणवज्जिओ सुइरं ।।

अर्थात्—यह जीव नंगा दुःख पाता है। वह संसार सागर में भ्रमण करता है। उसे बोधि विज्ञान दृष्टि प्राप्त नहीं होती क्योकि यह जीव नंगा होते हुए भी वह जिन भावना से दूर है।

मतलव यह है कि इस ससार मे पशु पक्षी भी नग्न रूप मे हैं। नारकी भी नग्न रूप मे हैं। ये सभी जिन भावना से दूर अदर और वाहर दोनो तरफ से नगे हैं। देव और मनुष्य वाहर से अनेक वेष भूषादि से सुसज्जित होने से वे वाहर से चगे दिखते हैं परन्तु आत्मज्ञान के विहीन होने से वस्त्राभूषणादि से युक्त होने पर भी नगे हैं। किन्तु जो दिगम्बर साधु वाह्या-भ्यन्तर परिग्रह रहित होते हुए भी आत्मज्ञान से युक्त हो तो चगे हैं नहीं तो वह सामान्य रूप से नगे हैं।

यह तो सिद्ध है कि विना भाव के द्रव्यलिंगी वन नहीं सकता द्रव्यलिंग धारण करने के वाद ही भावलिंगी होगा तभी सच्चा निर्ग्रंथ कहलायेगा। द्रव्यलिंग धारण किये हुए सभी भावलिंगी होंगे, यह कोई निश्चय नही है, किन्तु श्रावक के लिये द्रव्यलिंग ही गोचरीय है। भावलिंगी कौन है यह तो सर्वज्ञ के गोचर है।

परन्तु आज सामान्यतया भव्याभव्य की पहिचान के विषय पर कुन्दकुन्द स्वामी प्रवचनसार मे कहते हैं कि—

णो सद्दहंति सोक्खं सुहेसु परमं तिविगदघादीणं।
सुणिदूण ते अभव्वा वा तं पडिच्छंति ॥ ६२ ॥

जिनके घातिया कर्म नष्ट हो गये हैं, उन केवलियों के सुख मे उत्कृष्ट सुख है, यह सुनकर श्रद्धान नहीं करते हैं, वे अभव्य हैं। भव्य तो उसके वचन को सुनकर उसी समय स्वीकार करते है, और जो आगे जाकर स्वीकार करेंगे वे दूरभव्य है।

आगे जयसेनाचार्य कृत टीका मे लिखा है कि—

पारमार्थिक सच्चा अतीन्द्रिय सुख केवली को ही होता है।

जो कोई ससारियों में भी ऐसा सुख मानते हैं वे अभव्य हैं और जिनके भव्यत्व शक्ति की अभि व्यक्ति होने से सम्यग्दर्शन मार्ग प्रगट हो गया है वे उस अनंत सुख को वर्तमान मे श्रद्धान् करते हैं, तथा मानते हैं और जिनके सम्यक्त्व रूप भव्यत्व शक्ति की प्रगटता की परिणति भविष्यत्काल मे होगी ऐसे दूर भव्य हैं वे आगे श्रद्धान करेंगे। जिस समय वीतराग केवली मे श्रद्धा होती है उस समय दिगम्बर साधुओ में तथा जिनवाणी मे भी श्रद्धा उत्पन्न होती है, तभी सम्यक्त्व प्रगट होता है।

क्योंकि समन्तभद्र स्वामी कहते हैं कि—

श्रद्धानं परमार्थानामाप्तागम तपोभृताम्।
त्रिमूढापोढमष्टांग सम्यग्दर्शनमस्मयम् ॥

अर्थात्—सत्यार्थ रूप, आप्त, आगम तपोधन का श्रद्धान और तीन मूढता रहित, आठ अग सहित, जैसा का तैसा श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। इस दृष्टि से वीतराग देव के प्रति श्रद्धा के साथ, गुरु की व जिनवाणी की श्रद्धा भी आवश्यक है। यदि इन तीनों की अवहेलना करता है तो आचार्य कहते हैं कि—

प्रतिमायाम् शैलबुद्धिः गुरूबुद्धिश्च मानुषी।
मन्त्रे श्रुताक्षरी बुद्धिः नपाणांनारकी स्थिति ॥

अर्थात्—जो कोई वीतराग मूर्ति को पत्थर समझता है दिगम्बर साधुओ को सामान्य मनुष्य समझता है और शास्त्र एव मन्त्र को सामान्य अक्षर समझता है, उन्हे नियम से नरकायु का बन्ध होता है। आज जिनधर्म के उपासक अति विरले ही मिलते

है । इनमें भी अनेक मतभेद देखे जाते हैं ।

आजकल रूढिवाद अधिक चल रहा है, इसका कारण उपादान की कमजोरी तथा द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव के निमित्त कारण का भी अभाव है । इसलिए मिथ्यात्व के वशात् वस्तु स्वरूप का ज्ञान न होने से जैनी होने पर भी स्वात्मानुभूति से दूर है । साथ ही आज की आधुनिक शिक्षा भी मनुष्य के पतन का कारण हुई है कि गांधीजी ने "To the students." किताब मे लिखा है कि—

Modern education tends to turn our eyes away from the spirit The possiblities of the spirit force or soul force, Therefore do not appeal to us and our eyes are consequently rivetted on the evanescent, tra unsitory material force.

अर्थात्—आधुनिक शिक्षा हमे आत्मा से दूर ले जाती है । अतएव आत्मिक शक्ति की सम्भावना भी हमे नहीं जंचती और हमारी आंखे शीघ्र लुप्त होने वाली और अनित्य भौतिक शक्ति की ओर टकटकी लगाये रहती है । अर्थात् उस तरफ झुकी रहती है ।

इसलिये आज के युग में भौतिक शक्ति से प्रभावित जनता आत्मिक शक्ति के विकास मे असमर्थ हुई है । तो भी जनता एक ईश्वरीय शक्ति को मानती है, परन्तु अनेक मत भेदो के वशात् भ्रम हुआ है कि किस मत से वास्तविक ईश्वरत्व प्राप्त होगा । क्योकि आज के अहिंसावादी कहलाने वाले श्रावक, साधु भी

पूर्ण धर्मी बनने मे असमर्थ हुये हैं। इनमे द्रव्य, क्षेत्र, कालभाव का निमित्त भी है। इन निमित्तों से जैनी पूर्ण अहिंसा (द्रव्य-हिंसा भाव हिंसा से रहित) धर्मी नहीं दीखते हैं, परन्तु उस अहिंसा के उपदेष्टा जिनेन्द्र भगवान होने से जिनका धर्म जैन-धर्म है वह जैनधर्म सच्चा है इस धर्म को जो जितना पालेगा वह उतना ही फल पावेगा। जिसने पूर्णतया पालन किया वह जिनेन्द्र हो गया।

इसलिये इस विश्व का मूलधर्म अहिंसा धर्म को पूर्णतया प्राप्त करने के लिये ही दिगम्बर मुनि दीक्षा धारण करता है। अब अन्य मत मे मुनि की मान्यता बताते हैं।

प्रथम मे जैनमत मे ही दो सम्प्रदाय हुये हैं। १, दिगम्बर २. श्वेताम्बर। इन सम्प्रदायों की उत्पत्ति आचार्य भद्रबाहु के समय मे हुई। जिस समय मगध मे भयकर दुर्भिक्ष पड़ा उस समय सघ भेद का जन्म हुआ। उस समय आ० भद्रबाहु स्वामी ने दक्षिण भारत की तरफ विहार किया था, तब उनके साथ करीब १२ हजार निष्ठावान दृढ़व्रती साधु भी विहार कर वहाँ निर्विघ्नता से अपना धर्म ध्यान करने लगे, इधर करीब १२ हजार साधुओ ने स्थूलभद्र के अधिपत्य में रहने वाले समय की परिस्थितियों से पीड़ित होकर वस्त्र पात्र दण्ड वगैरह उपाधियों को स्वीकार कर लिया। जब दक्षिण की ओर गया हुआ साधु सघ लौटकर वापस आया और उनने वहाँ के साधुओं को वस्त्र, पात्र, वगैरह साथ मे देखकर उनको समझाया परन्तु वे नहीं माने अत वहीं से संघ भेद कायम हो गया।

दिगम्बरत्व व श्वेताम्बरत्व में परिग्रह संबंधी धारणा एव उनका तुलनात्मक अध्ययन

श्वेताम्वर मत की मान्यता के अनुसार मगध में दुर्भिक्ष पडने पर भद्रवाहु स्वामी नेपाल की ओर चले गये थे । जब दुर्भिक्ष निकल गया तव पाटली पुत्र मे वारह अगो का संकलन करने का आयोजन किया तो भद्रवाहु उस सघ मे सामिल नहीं हो सके । कारण यह था कि भद्रवाहु और सघ के साथ कुछ खेंचातानी हो गई थी जिसका वर्णन श्वेताम्वर आचार्य हेमचन्द्र ने अपने परिशिष्ट पर्व मे किया है । पाटली पुत्र मे भद्रबाहु की अनुपस्थिति मे ग्यारह अग एकत्र किये थे । दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनो ही भद्रबाहु को अपना आचार्य मानते हैं। ऐसा होने पर भी श्वेताम्वर अपने स्थविरो की पट्टावली भद्रबाहु के नाम से प्रारम्भ नहीं करते किन्तु उनके समकालीन स्थविर सम्भूति विजय के नाम से शुरू करते हैं । इससे यह फलित होता है कि पाटली पुत्र मे एकत्र किये गये अग केवल श्वेताम्बरों के ही माने गये हैं, समस्त जैन संघ के नहीं ।

दिगम्बरत्व एवं परिग्रह

दिगम्बर मुनियो को कुछ भी परिग्रह नहीं होता है । किन्तु पिच्छि कमण्डलु और शास्त्र ये उपकरण रूप मे स्वीकार करते हैं । श्वेताम्बर साधुओ मे १४ उपकरण मानते हैं (१) पात्र

(२) पात्रबन्ध (३) पात्र स्थापन (४) पात्र प्रमार्जनिका (५) पटल (६) रजस्त्राण (७) गुच्छक (८-९) दो चादरें (१०) ऊनी वस्त्र कम्बल (११) रजोहरण (१२) मुख वस्त्र (१३) मात्रक (१४) चोल पट्टक और एक दण्ड भी लिये रहते हैं।

इस प्रकार ये चौदह मान्यतायें श्वेताम्बर मतानुसार हैं।

पहले वे भी नग्न रहते थे। फिर क्रमेण कपड़ा लगाने लगे। पीछे सफेद वस्त्र पहनने लगे। यहाँ तक कि मूर्तियों को भी वस्त्राभूषण पहनाने लगे। और उन्होंने ग्यारह अंगो का सकलन करके उन्हें लिपिबद्ध भी किया है। परन्तु इन आगमों को दिगम्बर सम्प्रदाय नहीं मानता है। श्वेताम्बर सम्प्रदाय में दिगम्बर सम्प्रदाय से भिन्न कुछ भेदो का संक्षेप में वर्णन करते हैं कि (१) केवली का कवलाहार (२) केवली का नीहार (३) स्त्री मुक्ति (४) शूद्र मुक्ति (५) वस्त्र सहित मुक्ति (६) गृहस्थ वेष से मुक्ति (७) अलंकार और कछोटे वाली प्रतिमा का पूजन (८) मुनियो के १४ उपकरण (९) तीर्थंकर मल्लिनाथ का स्त्री होना (१०) अंगो की मौजूदगी (११) भरत चक्रवर्ती को अपने भवन मे केवलज्ञान की प्राप्ति (१२) शूद्र के घर मुनि आहार ले सकते हैं (१३) महावीर का गर्भ हरण (१४) महावीर का विवाह व कन्या जन्म (१५) महावीर स्वामी पर तेजोलेश्या का उपसर्ग (१६) तीर्थंकर के कंधे पर देव-दुनीत वस्त्र (१७) मरुदेवी का हाथी पर चढे हुये मुक्ति गमन (१८) साधु का अनेक घरो से भिक्षा लाकर एक स्थान पर बैठ कर ग्रहण करना इन बातो को दिगम्बर सम्प्रदाय नहीं मानता है। आज दिगम्बर श्वेताम्बर इन दोनो सम्प्रदायों मे अनेक

गच्छ उपशाखा और उपसम्प्रदायादि उत्पन्न हो गये हैं। फिर भी भगवान महावीरादि तीर्थंकरों ने नग्नता को प्राप्त कर मुक्ति प्राप्त की। ऐसा दोनों मानते हैं।

इससे सिद्ध होता है कि दिगम्बर मुनि इस भरत क्षेत्र मे वृषभनाथ तीर्थंकर के समय से ही पूजनीय होने से यह प्राचीन कही गयी है। श्वेताम्बर सम्प्रदाय काल की कुटिलता से बाद मे प्रगट हुआ है। इस दिगम्बरत्व की प्राचीनता अन्य सम्प्रदाय से भी सिद्ध है।

जिस समय भगवान वृषभदेव ने दिगम्बर मुनि दीक्षा ली उस समय उनके साथ ४००० हजार राजा भी भक्तिवशात मुनि हुये उन्होंने २, ३ महिने तक वृषभदेव के साथ तपस्या की फिर तीव्र क्षुधा तृषा से विचलित होने के कारण मुनि वृषभ देव से प्रार्थना की, किन्तु वृषभदेव के स्थिर सामायिकरत रहने से चर्या की अनभिज्ञता से, कि भरत चक्रवर्ती हमे क्या पूछेगा। इस शका से जगल मे ही फल फूल सेवन करना प्रारम्भ कर दिया। किन्तु वन देवता ने इस दिगम्बरी मुद्रा को देखकर फलफूल खाने के लिए मना किया फिर उन्होंने अनेक वेष को धारण कर क्षुधा, तृषादि को शांत कर लिया।

वृषभदेव उठकर चर्या के लिए निकले पर विधि नहीं मिलने पर फिर छ. महिने के बाद चर्या को निकले, किन्तु लोग आहार की विधि न जानने से मुनिराज के लिए आहार होना कठिन हो गया था। वृषभदेव ने चैत्र कृष्णा नवमी को दीक्षा ली थी व श्रेयास राजा के घर मे वैशाख सुदी तीज को प्रथम आहार १३ महिने आठ दिन के बाद ९ वें दिन आहार हुआ। उसी

बाद ४००० राजाओं ने अपनी अज्ञानता से कृत आचरण के प्रति पश्चातापकरते हुये आदिनाथ प्रभु के सामने प्रायश्चित लिया उनमे से बहुत से राजा मोक्ष गये। किन्तु उस समय जो लोग अनेक वेष धारण कर उदराग्नि शांत करने लगे थे, उनको देखकर अन्य जनता भी जैन वेष को धारण कर साधु कहलाने लगी। उस समय ३६३ मत प्रचलित हुये।

जैन दर्शन एवं श्रमण परम्परा

जैन दर्शन मे श्रमणों का इस प्रकार भेद बताया है।

आचार्योपाध्यायतपस्विशैक्ष्यग्लानगणकुलसङ्घसाधु मनोज्ञानाम्।

(तत्वार्थ सूत्र अ ९—श्लोक० २४)

अर्थात्—आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, शैक्ष्य, ग्लान, गण, कुल, संघ साधु और मनोज्ञ ये दश प्रकार के मुनियों के प्रकार है

तात्पर्य यह है कि जो मुनि पंचाचार का स्वयं आचरण करते हैं और दूसरो को कराते हैं वे आचार्य हैं। जो स्वयं अध्ययन करते हैं मुनिराजों को कराते हैं वे उपाध्याय हैं जो बहुत व्रत उपवास आदि करते हैं वे तपस्वी हैं। जो शिक्षा लेनेवाले साधु हैं वे शैक्ष्य है। जो रोगी साधु है वह ग्लान है। जो वृहद् मुनियो के अनुसार चलने वाले गण हैं। जो दीक्षा देने वाले आचार्य के शिष्य हैं वे कुल हैं। ऋषि, यति, मुनि, अनगार, इन चार प्रकार के मुनियों के समूह को संघ कहते हैं। जो बहुत से दीक्षित

साधक हैं वे साधु कहलाते हैं। जो लोक में ख्याति प्राप्त करने वाले हैं वे मनोज्ञ कहलाते हैं। इस प्रकार साधना करने वाले साधुओं के १०-भेद बताये गये हैं। इसके अतिरिक्त निर्ग्रन्थ साधुओं के ५ भेद बताये हैं।

पुलाकवकुशकुशीलनिर्ग्रन्थस्नातकानिर्ग्रन्था

यानी पुलाक, वकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक ये पांच प्रकार के निर्ग्रन्थ साधु हैं।।

अर्थात् जिसको उत्तर गुणों की भावना ही नहीं होती है और जिसके मूल गुणों मे भी क्षेत्र व काल में दोष लगता है उसे पुलाक कहते हैं। जो मूल गुणो का निर्दोष पालन करता है परन्तु अपने शरीर व उपकरणादि से कुछ स्नेह रखता है उसे बकुश कहते हैं। कुशील मे दो भेद हैं। १. प्रति सेवना कुशील २. कषाय कुशील। जो मूलगुण और उत्तरगुण पूर्णतया पालन करते हैं परन्तु उत्तरगुणो में कभी कभी दोष लग जाता है उसे प्रति सेवना कुशील कहते हैं। जिसने अन्य कषायों को तो वश मे कर लिया हो, किन्तु सज्वलन कषाय के उदय को वश मे नहीं किया हो। उसे कषाय कुशील कहते हैं। जिसके मोहनीय कर्म का तो उदय ही नहीं होता तथा शेष घातिया कर्म भी जल की रेखा के समान रह जाते हैं, उस बारहवें गुण स्थान वर्ती मुनि को निर्ग्रन्थ कहते हैं। और समस्त घातिया कर्मों को नाश करने वाले केवली भगवान स्नातक कहलाते हैं। यह जीव इस क्रम से निर्ग्रन्थ पदवी मे साधना कर अन्तिम में परमात्म पदवी को प्राप्त होता है। यह मार्ग सामान्य जीवों को दुर्लभ है। निर्ग्रन्थ पदवी की श्रेष्ठता अन्य मतों मे भी पाई जाती है।

वैदिक सन्यासोपनिषद में इस प्रकार भेद बताया है—

सन्यासः षडविधो भवतिः कुटिचक्र बहूदकः ।
हंस परमहंस तूरियातीत अवधूतश्चेति ॥

अर्थात्—यहाँ सन्यासियों के छः भेद बताये हैं कि—

(१) कुटिचक्र २. बहूदक ३. हंस ४. परमहंस ५. तूरियातीत ६. अवधूत । इन छहों मे पहले तीन प्रकार के सन्यासी त्रिदण्ड धारण करने के कारण "त्रिदण्डी" कहलाते हैं और जटा तथा वस्त्र कोपीन आदि धारण करते हैं। और परमहंस, परिव्राजक शिखा और यज्ञोपवीत जैसे द्विज चिन्ह धारण नहीं करता और एक दण्ड ग्रहण करता तथा एक वस्त्र धारण करता है अथवा अपनी देह मे भस्म रमा लेता है। और तूरियातीत परिव्राजक बिलकुल दिगम्बर होता है । और वह सन्यास नियमों का पालन करता है । और अन्तिम अवधूत पूर्ण दिगम्बर और निर्द्वन्द्व है वह सन्यास नियमों की भी परवाह नहीं करता । तूरियातीत अवस्था मे पहुंचकर परमहस परिव्राजक को दिगम्बर ही रहना पड़ता है किन्तु उसे दिगम्बर जैन मुनि की तरह केशलुंच नहीं करना होता । वह अपना सिर मुड़ाता और अवधूत पद तो तूरियातीत की चरम अवस्था है। इस कारण इन दोनों भेदों का समावेश परमहंस भेद में ही गर्भित किन्ही उपनिषदों मे मानलिया गया है । इस प्रकार उपनिषदों के इस वर्णन से यह स्पष्ट है कि एक समय हिन्दूधर्म मे भी दिगम्बरत्व को विशेष आदर मिला था । और वह साक्षात् मोक्ष का कारण माना गया था ।

आगे जैन दर्शन में निर्ग्रन्थों के उत्पाद का स्पष्टीकरण करते हैं।

उत्कृष्ट से पुलाक अठारह हैं सागर की स्थिति वाले सहस्रार स्वर्ग के देवों में, वकुश और प्रतिसेवना कुशील का बाईस सागर की स्थिति वाले आरण और अच्युत स्वर्ग के देवो में तथा कषाय कुशील और निर्ग्रन्थो का तेतीस की स्थिति वाले सर्वार्थसिद्धि के देवों में उत्पाद होता है। सबका जघन्य दो सागर की स्थिति वाले सौधर्म और ईशान स्वर्ग के देवों में होता है। स्नातक का उपपाद मोक्ष में होता है। यह वास्तविक सिद्धान्त का निरूपण है। कालक्रम के मतभेद से अन्य ऋषियों की मान्यता से जाबालोपनिषत् वैदिक ग्रन्थ मे भी इस प्रकार की मान्यता है—

यथाजात रूपधरो निर्ग्रन्थो निष्परिग्रह।
स्तत्तद् ब्रह्ममार्गे सम्यक्संपन्नः॥

(ईशाद्य पृ० १३१)

अर्थात —यथाजात निर्ग्रन्थ दिगम्बर जैन मुनियों के समान आचरण किया था। आगे परमहंसोपनिषद् मे लिखा है कि—

इदमन्तरं ज्ञात्वा स परमहंस
आकाशाम्वरो न नमस्कारो।
न स्वाहाकारो न निन्दा न,
स्तुतिर्याहच्छिको भवेत्स भिक्षुः॥

ईशाद्य पृ०-१५०

इस प्रकरण में भिक्षु को अपनी प्रशंसा निन्दा अथवा आदर अनादर से सरोकार ही क्या। आगे नारद परिव्राजकोपनिषत् में लिखा है कि—

यथा विधिश्चेज्जात रूपधरो भूत्वा······जातरूप धरश्चरेदात्मानमन्विच्छेद्यथा जातरूपधरो निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहस्तत्त्व ब्रह्ममार्गेसम्यक् संपन्नः

(८६ तृतीयोपदेश ईशाद्य पृ० २६७-२६८)

तुरीयः परमोहंसः साक्षान्नारायणोयतिः ।
एकरात्रं वसेद्ग्रामेनगरे पञ्चरात्रकम् ।। १४ ।।

वर्षाभ्योऽन्यत्र वर्षासुमासांश्चचतुरो वसेत् ।
मुनिः कौपीनवासाः स्यान्नग्नो वा ध्यान अपरः ।३२।

"जातरूपधरो भूत्वा दिगम्बर" चतुर्थोपदेशः।

(ईशाद्य पृ० २६८-२६९)

अर्थात्—इन उल्लेखों में भी परिव्राजक को नग्न होने का तथा वर्षा ऋतु मे एक स्थान मे रहने का विधान है। मुनि कौपीनवासा आदि वाक्य मे छहों प्रकार के सारे ही परिव्राजकों का मुनि शब्द से ग्रहण कर लिया गया है। इसलिए इनके सम्बन्ध मे वर्णन कर दिया कि चाहे जिस प्रकार का मुनि अर्थात् प्रथम अवस्था का अथवा आगे की अवस्थाओं का यह तात्पर्य नहीं है कि मुनि वस्त्र भी पहन सकता है। और नग्न

भी रह सकता है। जिससे कि नग्नता पर प्राप्ति की जा सके। यह पहिले ही परिव्राजकों के छह भेदो मे दिखाया जा चुका है कि उत्कृष्ट प्रकार के परिव्राजक नग्न ही रहते हैं और वे श्रेष्ठतम फल को भी पाते हैं।

इससे सिद्ध होता है कि विश्व धर्म अहिंसा का अवतार रूप वृषभादि महावीर तीर्थंकरों के द्वारा कथित जैनधर्म में निर्ग्रन्थत्व की सत्यथा और वास्तविक फल का निरुपण किया गया है।

वैदिक मत में सन्यासोपनिषद् मे इस रूप में निर्ग्रन्थ और उनको होने वाले परिणाम बताये है।

आतुरो जीवति चेत्क्रम संन्यासः कर्त्तव्यः। आतुर, कुटीचकयोर्भूलोक भुवर्लोकौ। बहूदकस्य स्वर्गलोकः। हंसस्य तपोलोकः। परमहंसस्य सत्यलोकः। तुरियातीत अवधूतयोः स्वस्मन्येव कैवल्यंस्वरूपानुसंधानेन भ्रमर कीटन्यायवत्।

(ईसाद्य पृ० ४१५, सन्यासोपनिषत् ५६)

अर्थात्–आतुर यानी संसारी मनुष्य का भुवर्लोक हंसास न्यासी का अन्तिम परिणाम स्वर्ग लोक है परमहंस का सत्यलोक है, कैवल्य तुरियातीत और अवधूत का परिणाम है। अतः यदि इन सन्यासियों में वस्त्र परिधान और दिगम्बरत्व का तात्विक भेद नहीं होता तो उनके परिणाम से इतना गहरा अन्तर नहीं हो सकता। दिगम्बर मुनि वास्तविक योगी है वही कैवल्य पद का अधिकारी है। इसलिये उसे साक्षात नारायण कहा गया

है। आगे नारद परिव्राजकोपनिषद् मे—

ब्रह्मचर्येण संन्यस्य संन्यासा
ज्जातरूपधरो वैराग्य सन्यासी ।

अर्थात्—ब्रह्मचर्य से सन्यासी जातरूपधर दिगम्बर सन्यासी और वैराग्य से भी सन्यासी होते हैं।
आगे नारद परिव्राजकोपनिषद् १-५ मे कहा है कि

क्रमेण सर्व सन्यस्य सर्वमनुभूय
ज्ञानवैराग्याभ्यां स्वरूपानुसंधानेन ।
देहमात्रावशिष्टः संन्यस्य जातरूपधरो
भवति स ज्ञानवैराग्य सन्यासी ।।

अर्थात्—वैराग्य सन्यासी भेद एक अन्य प्रकार से किया गया है। इस प्रकार से परिव्राजक सन्यासियो के चार भेद किये गये हैं। १ वैराग्य सन्यासी २ ज्ञान सन्यासी ३ ज्ञान-वैराग्य सन्यासी और ४. कर्म सन्यासी। इनमे से ज्ञान सन्यासी को भी नग्न होना पड़ता है।

इस प्रकार उपनिषदो के अनुसार दिगम्बर साधुओ का होना सिद्ध है। किन्तु यह बात नहीं है कि मात्र उपनिषदों मे ही दिगम्बरत्व का विधान है, बल्कि वेदो मे भी साधु की नग्नता का उल्लेख मिलता है

हिन्दू पुराणों में दिगम्बर साधु की मान्यता

लिङ्ग पुराण अ० ४७ पृ ६८ मे भी नग्न साधु का उल्लेख है

सर्वात्मनात्म निस्थाप्य परमात्मा नमीश्वरं ।
नग्नजटो निराहारो चीरी ध्वांतः गतोहिसः ॥ २२ ॥

अर्थात्—जो श्रमण साधु है वह नग्न, जटा, निराहार परिग्रह रहित होकर और ऐहिक वाञ्छा से रहित होकर परमात्म नमीश्वर को सर्वात्म रूप से आदर्श बनाकर अपनी साधना को पूरी करता है, आगे लिखा है कि—

वामनोपि ततश्चक्रे तत्र तीर्थावगाहनम् ।
याद्दग्रूपः शिवोहिष्टः सूर्य बिम्बे दिगम्बरः ॥६४॥

(स्कंध पुराण प्रभास खण्ड मे अ–१६ पृ० २२१)

अर्थात्—वामन ने भी जिस समय तीर्थावगाहन किया उस समय दिगम्बर रूप मे शिव को देखा इससे सिद्ध किया—यह शिव भी दिगम्बर रुप मे रहते थे।

आगे भर्तृहरि वैराग्य शतक मे कहते हैं कि—

एकाकी निःस्पृह शान्तः पाणिपात्रो दिगम्बरः ।
कदाशम्भो भविष्यामि कर्म निर्मूलनक्षमः ॥५८॥

अर्थात्—हे शम्भो ! मैं अकेला, इच्छा रहित शान्ति पाणि

पात्र और दिगम्बर होकर कर्मों का नाश कब कर सकूंगा। वह और भी कहते हैं कि—

> अशीमहि वयं भिक्षां दिशावासो वसीमहि।
> शयीमहि महीपृष्ठे कुर्वीमहि किमीश्वरैः ॥६०॥

अर्थात्—अब हम भिक्षा ही करके भोजन करेंगे। दिशा ही के वस्त्र धारण करेंगे अर्थात नग्न रहेंगे और भूमि पर ही शयन करेंगे। फिर भला धनवानों से हमें क्या मतलब?

सातवीं शताब्दी में जब चीनी यात्री हुं एन सांग बनारस पहुंचा तो उसने वहां हिन्दुओं के बहुत से नग्न साधु देखे। वह लिखता है कि "महेश्वर भक्त साधु बालों को बांधकर जटा बनाते हैं तथा वस्त्र परित्याग करके दिगम्बर रहते हैं और शरीर में भस्म का लेप करते हैं। ये बड़े तपस्वी हैं। इन्हीं को परमहंस परिव्राजक कहना ठीक है किन्तु हुं एन सांग से बहुत पहले ईस्वी पूर्व तीसरी शताब्दी में जब सिकन्दर महान ने भारत पर आक्रमण किया था, तब भी नग्न हिन्दू साधु वहां मौजूद थे। आज भी प्रयाग में कुम्भ के मेले के अवसर पर हजारों नागा (नग्न) साधु वहां देखने को मिलते हैं। कतार बांध कर शरह (शहर) आम नग्न वेष में निकलते हैं इस प्रकार हिन्दुओं के लिये भी दिगम्बर साधु पूज्य है।

महाभारत में अर्जुन को श्री कृष्ण महाराज समझाते हुये कहते हैं कि—

> आरोहत्स्वरथे पार्थ गांडीवं च करे कुरु।

निर्जिता मेदिनी मध्ये निर्ग्रंथो यस्य सन्मुखे ।।

अर्थात्—हे अर्जुन ! तुम हाथ मे धनुष लेकर रथ के ऊपर चढो क्योकि इस पृथ्वी पर इन्द्रिय विजेता निर्ग्रंथ साधू 'दिगम्बर' जिनके सामने आयेगें उसकी उन साधु के दर्शन से निश्चित रूप मे विजय होगी । यह शुभ शकुन है । और श्री कृष्ण महाराज ने भगवद्गीता मे कहा है कि—

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषुविगतस्पृहः ।
वीतराग भयक्रोधः स्थितर्धीमुनीरूच्यते ।।

(गी० अ २-५६)

अर्थात—जिसका मन दु खों की प्राप्ति में उद्वेग रहित हैं, और जिसकी भौतिक सुखों की इच्छा हट गयी है, तथा राग, भय, क्रोध, आदि जिसका नष्ट हो गया है, वह मुनि ही स्थिर बुद्धि वाला कहा जाता है और भी कहते हैं कि—

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः ।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ।।

अर्थात्—शरीर, शिर ग्रीवा, को समान और अचल धारण किये हुए दृढ होकर अपनी नासिका के अग्रभाग को देखकर अन्य दिशाओं को न देखता हुआ आगे ब्रह्मचर्य व्रत मे स्थित स्वाधीन मन वाला योगी ही शाति को प्राप्त होता है । इससे सिद्ध होता है कि श्री कृष्ण भी दिगम्बर मुनियो से परिचित थे, उस समय दिगम्बर साधुओ की उपस्थिति थी ।

इस्लाम एवं दिगम्बरत्व

अब इस्लाम मत में भी दिगम्बरत्व की मान्यता बताते हैं—
पैगम्बर हजरत मुहम्मद ने खुद फरमाया है कि—

The love of the world is the root of all evils,"
The world is as a poison and as a famine to muslims, and when they leave it, you may say they leave famine and a prison

(Sayings of mohammad.)

अर्थात्—संसार का प्रेम ही सारे पापो की जड़ है। संसार मुसलमान के लिये एक कैद खाना और कहत के समान है और जब वे उसको छोड देते हैं, तब तुम कह सकते हो कि उन्होने कहत और कैदखाने को छोड दिया।

हजरत मुहम्मद के बाद इस्लाम के सूफी तत्व वेत्ताओ के द्वारा त्याग धर्म के बारे मे इस प्रकार कहा गया है कि—

To abandon the world, its comforts and dress–all things now and to come–comfortably with the hadees of the prophet,"

अर्थात्—दुनियां का सम्बन्ध त्याग देना–तर्क कर देना–उसकी आशा–इशो और पोशक–सबही चीजों को अब की और आगेकी पैगम्बर सा० की हदीस के मुताबिक इस उपदेश

के अनुसार इस्लाम मे त्याग और वैराग्य को विशेष स्थान मिला उसमे ऐसे दरवेश हुये जो दिगम्बरत्व के हिमायती थे और तुर्किस्थान मे अब्दुल नामक दरवेश मादरजात नगे रहकर अपनी साधना मे लीन रहते हुये बताये गये हैं ।

The higher saints of islam, called 'Abdals generally went about perfectly Naked, as described by miss becy M Garnet in her excellent account of the lives of muslim Dervishes, entitled "Mysticism & Magic in Turkey" (NJ. P 10.)

जिल्द और पृष्ठ के नम्बर "मस्नवी" के उर्दू अनुवाद "ईल्हा मे मन्जूम के हैं"

इस्लाम के महान् सूफी तत्व वेत्ता और सुप्रसिद्ध "मस्नवी" नामक ग्रन्थ के रचियता श्री जलालुद्दीन रूमी दिगम्बरत्व का खुलासा उपदेश निम्न प्रकार से देते हैं ।

१. गुफ्तमस्तऐमहतव बगुजार ख · ·· · अज विरहना के तवां बुरदन गख । (जिल्द २ सफा २६२)

२. जामा, पोशा रा नजर परगाज रास्त–जामें अरियांरा तजल्वी जेवर अस्त । (जिल्द २ सफा ३८२)

३. याज अरियानान वयकसू वाज ख या ५ ईशां फारिग व बेजामा शव ।

४. वरनमी तानी कि कुल अरियां शवी–जामा कम कुनता रह और सतरवी । (जिल्द २ सफा ३८३)

इनका उर्दू में अनुवाद 'इल्हा में "मन्जूम" नामक पुस्तक में इस प्रकार किया गया है—

१. मस्त बोला, महत्व, कर काम जा होगा क्या नङ्गे से तू अहदेवर आ।
२. है नजर बीवी पें जामें पोश की है तजल्ली जेवर अरियांतनों।
३. या विरहनों से ही यकमू वाकई या हो उनकी तरह बेजामें अखो।
४. मुतलक न अरिया जो हो सकता नहीं कपड़े कम, यह है कि औसत के करो।

भाव स्पष्ट है कोई तार्किक मस्त नंगे दरवेश से आ उलझा। उसने सीधे से कह दिया कि जा अपना काम कर तू नङ्गे के सामने टिक नहीं सकता। वस्त्र धारी को हमेशा बीवी की फिकर लगी रहती है, किन्तु नंगे तन की शोभा देवी प्रकाश है बस या तो तू नंगे दरवेशों से कोई सरोकर न रख अथवा उनकी तरह आजाद और नंगा होजा। और अगर तू एक दम सारे कपड़े नहीं उतार सकता तो कम से कम कपड़े पहन और तू मध्यमार्ग को ग्रहण कर।

कितना अच्छा उपदेश है, एक दिगम्बर जैन साधु भी तो यही उपदेश देता है। इससे दिगम्बर का इस्लाम धर्म के दृष्टांत से स्पष्ट हो जाता है।

इस्लाम के इस उपदेश के अनुरूप सैकड़ों मुसलमान फकीरों ने दिगम्बर वेष को गत काल में धारण किया था। उनमें अबुल्कासिम, गिलानी और सरमद शहीद उल्लेखनीय है।

एक अन्य और दृष्टांत बताते हैं—

सरमद बादशाह औरंगजेब के समय मे दिल्ली होकर गुजरा है और उसके हजारो नङ्ग शिष्य भारत भर मे बिखरे पडे थे वह मूल मे कजहान (अरमोनिया) का रहने वाला एक ईसाई व्यापारी था। विज्ञान और विद्या का भी वह विद्वान् था। अरबी अच्छी जानता था। व्यापार के निमित्त भारत मे आया था। सिध (ठट्टा) मे एक हिन्दू लडके के इश्क मे पड कर मजनू बन गया। उपरात इस्लाम के सूफी दरवेशो की सगति मे पडकर मुसलमान हो गया। मस्त नगा वह शहरो और गलियो मे फिरता था। अध्यात्मवाद का प्रचारक था। घूमता घूमता दिल्ली जा डटा। शाहजहां का अन्त समय था। दारा-शिकोह शाहजहां बादशाह का बडा लडका उसका भक्त हो गया। सरमद आनन्द के साथ अपने मत का प्रचार करता रहा उस समय फ्रांस से आये हुए डा० बरनियर ने खुद अपनी आँखो से उसे नंगा दिल्ली की गलियो मे घूमते हुये देखा था। किन्तु जब शाहजहां और दारा को मारकर औरगजेब बादशाह हुआ तो सरमद की आजादी मे भी अड़ंगा पड गया। एक मुल्ला ने उसकी नग्नता के अपराध मे उसे फासी पर चढाने की सलाह औरगजेब को दी, किन्तु औरंगजेब ने नग्नता को इस दण्ड की वस्तु न समझा और सरमद से कपडे पहनने की दरख्वास्त की। इसके उत्तर मे सरमद ने कहा—

"आंकसकि तुरा कुलाह सुल्ताजी दाद,
मारा हमओ असबाब परेशानी दाद,
पेशानीद लवास हरकरा ऐबे दीद,
बे ऐबारा लबास अर्यानी दाद"

यानी जिसने तुमको बादशाही ताज दिया, उसी ने हमको परेशानी का सामना दिया। जिस किसी मे कोई ऐब पाया उसको लिबास पहनाया, और जिनमे ऐब न पाये उनको नङ्गे पन का लिबास दिया। बादशाह इस रुबाई को सुन कर चुप हो गया। लेकिन सरमद उसके क्रोध से बच न पाया। वह फिर अपराधी बनाकर लाया गया। अपराध सिर्फ यह था कि वह "कलमा" आधा पढता है। जिसके माने होते हैं कि कोई खुदा नहीं है। इस अपराध का दन्ड उसे फांसी मिली और वह वेदान्त की बाते करता हुआ शहीद हो गया? उसको फांसी दिये जाने मे एक कारण यह भी था कि वह दारा का दोस्त था सरमद की तरह न जाने कितने नगे मुसलमान दरवेश हो गुजरे हैं। बादशाह ने उसे मात्र नगे रहने के कारण सजा न दी, यह इस बात का द्योतक है कि व नग्नता को बुरी चीज नहीं समझता था और सचमुच उस समय भारत मे हजारों नगे फकीर थे। ये दरवेश अपने नगे तन में भारी २ जजीरें लपेटकर बड़े लम्बे २ तीर्थाटन किया करते थे।

सारांशत:—इस्लाम मजहब मे दिगम्बर साधु पद का चिन्ह रहा है। और उसको अमलीशक्ल भी हजारों मुसलमानों ने दी है। और चू कि हजरत मुहम्मद किसी नये सिद्धान्त के प्रचारक का दावा नहीं करते इसलिये कहना होगा कि ऋषभाचल से प्रगट हुई दिगम्बरत्व गगा की एक धारा को इस्लाम के सूफी दरवेशो ने भी अपना लिया था।

ईसाई मत तथा दिगम्बरत्व

ईसाई मत के प्रतिपादक ईसा भी जैन श्रमणों के निकट शिक्षा पा चुके थे बाइबिल मे स्पष्ट कहा गया है कि—

उसने अपने वस्त्र उतार डाले और सैमुयल के समक्ष ऐसे ही घोषणा की और उस सारे दिन तथा रात वह नंगा रहा (सैमुयल १६/२४) अमोज का पुत्र ईसाईया अपने प्रभु की आज्ञा से नगा हुआ और नगे पैरो से वह विचरने लगा। (ईसाईया २०/२) उस समय कितने ही ईसाई साधु दिगम्बर भेष में रह भो चुके हैं। इससे सिद्ध होता है कि वाइबिल मे भी मुमुक्षु को दिगम्बर मुनि होना श्रेष्ठ बताया गया है।

यहूदी (Jecos) लोगों की प्रसिद्ध पुस्तक में लिखा है कि—

The ascension of Isaiah (P. 32) में लिखा है कि—

(Those) who believe in the ascension into heaven with drew and settled on the mountain .. .. they were all prophets (saints) and they had nothing with them and were naked

अर्थात्—वह जो मुक्ति की प्राप्ति में श्रद्धा रखते थे एकान्त में पर्वत पर जा जमे वे सब सन्त थे और उनके पास कुछ नहीं था और वे नंगे थे।

अपॉसल पीटर ने नंगे रहने की आवश्यकता और विशेषता को निम्न शब्दो में बड़े अच्छे ढंग से "Clementine homilies"

में दर्शा दिया है कि—

"For we who have chosen future the things in so for as we possess more goods than these whether they be clothings or any other thing possess sins because we ought not to have anything to all of us possessions are sins the diprivation of there in whatever way it many lake piece is the removal of sins"

अर्थात्—क्योकि हमने भविष्य की चीजो को चुन लिया है यहाँ तक कि हम उनसे ज्यादा सामान रखते हैं चाहे वे फिर कपडे लत्ते हो या कोई दूसरी चीज पाप को रखे हुए है क्योकि हमे कुछ भी अपने पास नहीं रखना चाहिये। हम सब के लिये परिग्रह पाप है। जैसे भी हो वैसे इनका त्याग करना पापो को हटाना ह।

दिगम्बरत्व की आवश्यकता पाप से मुक्ति पाने के लिये आवश्यक ही है। ईसाई ग्रथकार ने इसके महत्व को खूब दरशा दिया है।

साधारणत· दिगम्बर मुनि के लिये व्यवहृत शब्द नि न प्रकार देखने को मिलते है (लंगोटी रहित) अकच्छ आकिनचन अचेलक (अचेलव्रती) अतिथि, अनगारी, अपरिग्रही, अर्हन्तक

आर्य (साधु) ऋषि गणी गण मे थित) गुरू, जिनलिङ्गी तपस्वी, दिगम्बर, दिग्वास नग्न निश्चेल (वस्त्र रहित)

निर्ग्रंथ, निरागार (गृह रहित) पाणिपात्र, भिक्षुक, महाव्रती, माहण (ममत्व रहित) मुनि, यति, योगी, वातवसन, विवसन, सयमी, स्थविर, साधु, सन्यस्थ, श्रमण, क्षपणक, (नग्न साधु) । इत्यादि नाम जैनेतर साहित्य मे भी वह एक से अधिक सख्या मे उल्लिखित है । इन सभी शब्दो का अर्थ भी दिगम्बरत्व के महत्व का प्रदर्शक ही है ।

बौद्ध एवं दिगम्बरत्व मत

अब आगे बौद्धमत मे दिगम्बरत्व की मान्यता किस प्रकार की है, उसे बताते हैं ।

जिस समय गौतम बुद्ध जैन साधु के समान नग्न होकर तपश्चरण करने लगे, उस समय उन्हे कठिनता मालुम पड़ने से गेरूआ वस्त्र धारण किया था । उन्होंने मज्झिम निकाय २ महासीहनाद सुत्त १२ मे स्वय बतलाया है कि—

अचेल को होमि ...... हत्थापलेखनो ......
नाभिहत न उद्दिस्सकतं न निमंतरण सादियामि, सो न कुम्भीमुखा परिगण्हामि न कलोपि मुखा परिगण्हामि, न एलकमंतरं, न दण्डमतरं न मुसलमंतरं, न दिन्नं भुंजमानात न गब्भनिया, न पायमानाया न पुरिसत रगताय न संकित्तिसु न यथ सा उपट्ठितो होति, न

यथ भविखका संड २ चारिनी, न मच्छं न मासं सुरं न मरेयं न युसोदकं पिवामि सोएकागारिको वाहोमि एकाल्लोपिका द्वागरिको होमि द्वालोपिको सत्तागारिको एकाहं व आहारं आहारेमि। इति एयरूयं अद्धामासिकंपि परियाय मत्त भोजनानुयोगम् अनुयुतोविहरामि केस्स मस्सुलोचकोविहोमि केसयरस्सु लोचानुयोगं अनु युतो पावउद विन्दुम्हि पिमे दया पच्चपट्टिताहोति। माहं खुद्दके पाणे विसम गते संघातम् आयादे स्संति।

अर्थ - मैं वस्त्र रहित रहा, मैने आहार अपने हाथो से किया न लाया हुआ भोजन लिया, न अपने उद्देश्य से बनाया हुआ लिया, न निमन्त्रण से जाकर भोजन किया, न वर्तन मे खाया, न थाली मे खाया, न घर की ड्योढी मे खाया, न खिड़की से लिया न मूसल से कूटने के स्थान से लिया न गर्भिणी स्त्री से लिया, न वच्चे को दूध पिलाने वाली से लिया न भोग करने वाली स्त्री से लिया, न मलिन स्थान से लिया, न वहाँ से लिया जहां कुत्ता पास खडा था, न वहां से लिया जहा मक्खियां भिन भिना रही थी। न मछली, न मास, न मदिरा, न सड़ा माड खाया न तुस का मैला पानी पिया। मैने एक घर से भोजन किया, सो भी एक ग्रास लिया, या मैने दो घर से भोजन लिया तो दो ग्रास लिये। इस तरह मैने सात घरों से भोजन लिया सो भी सात ग्रास, एक घर से एक ग्रास लिया मैंने कभी दिन मे एक वार भोजन किया कभी पन्द्रह दिन भोजन न किया। मैंने मस्तक दाढी व मूंछो का केश

लुंच किया उस देश लुंच की क्रिया को चालू रखा। मैंने एक बून्द पानी पर भी दयालु रहता था। क्षुद्र जीव की हिंसा भी मेरे द्वारा न हो ऐसा मैं सावधान रहता था।

सो तत्तो सो सीनो एको भिमनके वने।
नग्गो न च आगी असीनो एसनापसुतो मुनीति ॥

अर्थ—इस तरह कभी गर्मी कभी ठंड को सहता हुआ भयानक वन मे नग्न (नंगा) रहता था। मैं आग से तापता नहीं था। मुनि अवस्था मे ध्यान मे लीन रहता था।

इससे सिद्ध होता है कि महात्मा बुद्ध पहले जैनसाधु की चर्या करते थे। कालान्तर मे उन्हे जब कठिन प्रतीत हुई तब वे जैन क्षुल्लक के समान मध्यम मार्ग को अपना कर तपस्या करने लगे। कुछ समय पश्चात् भगवान महावीर ने दीक्षा लेकर तपस्या कर सर्वज्ञ हुये। उस समय राजगृह के गृद्धकूट पर्वत पर महात्मा बुद्ध घूम रहे थे। तब ऋषिगिरि के समीप काली शिला पर बहुत से निर्ग्रंथ तीव्र तपस्या मे लगे हुए थे उस समय उन निर्ग्रंथ साधुओ से गौतम बुद्ध तपस्या के बारे में पूछने पर साधुओ ने भगवान महावीर का उपदेश सुनाया। उस समय बुद्ध भगवान महावीर के उपदेश को ठीक समझते थे। और उन्हें भगवान की सर्वज्ञता का भी ज्ञान था (मज्झिमनिकाय मे १९२-९३ पर लिखा है)

गौतम बुद्ध ने भगवान महावीर के विषय मे दीर्घनिकाय में प्रथम भाग के ४८ वें पृष्ठ पर लिखा है कि—

निगण्ठो नातपुत्तो संघी चेव गणी चेव गणाचार्यो च ञातो यसस्सी तित्थकरो साधुसम्मतो बहु जनस्स- रत्तस्सु चिर पव्वजितो श्रद्धगतो वयोश्रनुप्पता ।।

श्रर्थात्—निग्रंथ ज्ञात पुत्र सघ के नेता हैं, गणाचार्य है, दर्शन विशेष के प्रणेता है, विशेष विख्यात हैं तीर्थंकर हैं, बहुत मनुष्यो द्वारा पूज्य हैं। अनुभवशील है, बहुत समय से साधु चर्या करते हैं, श्रौर श्रधिक वय वाले हैं। इस प्रकार गौतम बुद्ध के द्वारा भी निग्रंथ (दिगम्बरत्व) पूज्य माने गये हैं सभी मुमुक्षुश्रों को ग्राह्य माने गये हैं। इस विषय मे बौद्धग्रथ मे अनेक प्रमाण गये जाते हैं ।

प्रब श्रागे श्रागम (शास्त्र—ग्रन्थ) पर प्रकाश डालते हैं ।

श्रागमानुसार जिनवाणी का स्वरूप

जिस प्रकार वीतराग देव गुरु पूजनीय है, उसी प्रकार शास्त्र री पूजनीय है। क्योंकि जो परमात्मा हुए हैं उन्होने जगत को हेतोपदेश दिया है। उनकी वाणी को जिनवाणी कहते हैं। जेतने जिन पूजनीय हैं उतनी जिनवाणी भी पूजनीय है। प्रथम ने सर्वज्ञ देव के दिव्य ध्वनि से अमृत वाणी निकली। उस वाणी को गणधर स्वामी ने भेलकर १२ श्रंग रूप रचना की। तदन- तर गणधर स्वामी के उपदिष्ट उन द्वादशांग वाणी को श्राचार्य उपाध्याय गण ने श्रमणकर भव्य जीवो को उपदेश रूप मे सुनाया। सर्व साधुगण जिन कथित वाणी को सुनकर अपनी

आत्म साधना मे तत्पर हुये और श्रावक गण भी उस वाणी को सुनकर सासारिक शरीर भोगों से विरक्त होते हुए अपने शक्त्या-नुसार व्रत नियमो को पालन कर आत्म हिताभिलाषी हुए।

अनेकान्तवाद क्या है

आज इस युग मे उस जिनवाणी का वास्तविक तात्पर्य न समझने से अनेक आचार्य एव विद्वान गणो ने अपनी बुद्धि की तारतम्यता से ग्रन्थो की रचना की है। उसमे एक दूसरे की बुद्धि, स्वभाव एवं गुणधर्म से भिन्नता आ जाने से अनेक मत भेद हुये हैं। एक फिलासिफर ने कहा है कि—

Many man, Many mind, many virtue, Many Nature, in this world

अर्थात—इस जगत मे अनेक तरह के मनुष्य हैं। उनका बुद्धि गुण स्वभाव भी प्रत्येक का अनेक रूप है। किन्तु सिद्ध परमात्माओ के ज्ञान, गुण, स्वभाव सबका एक रूप है। हिन्दू महाभारत मे धर्मराज ने यक्ष के प्रश्न का इस प्रकार उत्तर दिया बताते हैं कि—

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना,
नैकोमुनीर्यस्य मतं प्रमाणम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां,
महाजनो येन गतः स पन्था॥

अर्थात्—तर्क की कहीं प्रतिष्ठा नहीं श्रुतियां भी भिन्न २ है कोई एक ही मुनि नहीं है कि जिसका मत प्रमाण मान लिया जाय। धर्म का तत्व गुफा मे छिपा हुआ है। अतिगूढ है जिस मार्ग से महा पुरुष जाते हैं। वहीं मार्ग वास्तविक मार्ग है। यह बात इस युग से बराबर मिलती जुलती है। आज हम अनेक पथ अनेक सत व अनेक ग्रथ देख रहे हैं। इन सतो के भेद से ही अनेक ग्रन्थ तथा अनेक पथ की सृष्टि हुई है। आज प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है कि जिस सन्त मे कुछ चमत्कार देखने मे आया, जनता उस सन्त के बताये हुए मार्ग पर चलने लगी। एक अलग मत के उपासक बन गये। इसी प्रकार अनेक मत भेद हुए और भी हो रहे हैं। इससे वास्तविक वस्तु स्वरूप का ज्ञान न होने से प्राय सभी दुखी हैं अपितु एक दूसरे मत वाले को देखकर, जलना, अवहेलना करना आदि भी जनता की एक स्वाभाविकता होने से सभी अशान्ति मे पड़े हुये हैं। इन जीवो के दुख एव अशान्ति दूर करने मे आज कोई भी ग्रन्थ पथ सत समर्थ नहीं हुआ है। आगे इस (पंचम काल) कलियुग के अन्त तक अभी जो कुछ भी शान्ति सुख ज्ञान बल है वह भी घटते जाकर छठवें काल मे जीव को व्यावहारिक धर्म के अभाव से महान संकट प्राप्त होने वाला है। किन्तु जिस मनुष्य के पूर्व कृत पुण्योदय प्रबल है। वह मनुष्य आज किसी सत, ग्रन्थ, पन्थ को देखकर अपने परिणाम को नही बिगाडते हुये सर्वज्ञ वीत-राग हितोपदेशी का अभाव होते हुए भी उनके द्वारा कथित स्याद्वाद, अनेकान्तवाद के द्वारा वस्तु तत्व का निर्णय कर उस मोक्ष मार्ग में प्रवृत्ति करने वाले दृढ सम्यक्त्वी श्रद्धालु जीव भी आज इस भरत क्षेत्र मे विद्यमान होने से भव्य जीवो को मार्ग दर्शन मिल रहा है। यह शुभ अवसर भी पञ्चम काल के

अन्त तक ही मिलने वाला है। हमारे लिये ऐसे महान पुरुष की सगति से स्याद्वाद अनेकान्त को समझकर अपने निर्मल करना ही बुद्धिमानी है। अब सत्य जानने के पुरुषार्थ सिध्युपाय मे कहते हैं कि—

लोकत्रयैकनेत्रं निषिद्धजात्यन्धसिन्धुरविधानाम् ।
सकलनयविलसितानां विरोधमथनं नमाम्यनेकान्तम् ॥

अर्थात्—नेत्र के समान जो त्रिकाल वर्ती पदार्थों को जानने वाला है, जन्मान्ध पुरुषों की हाथी के विषय में की गई अधूरी कल्पनाओ को दूर करने वाला है, समस्त नयों (एकांगीज्ञानो) के पारस्परिक विरोध को दूर करने वाला है, ऐसे अनेकान्त-वाद को मैं नमस्कार करता हूं।

भिन्न २ दृष्टिकोणों से पदार्थों का ज्ञान मानकर मत मतान्तर अपने एकांगी ज्ञान को ही पूर्ण सत्य (ज्ञान) मानकर दूसरे मत के सिद्धान्त को असत्य बतलाते हुये परस्पर वाद विवाद करते हैं। जैसे कि एक गाँव मे एक हाथी आया उस समय लोगों के मुख से "हाथी आया" शब्द सुनकर उस रास्ते से जाने वाले छः अन्धे हाथी को समझने के लिए टटोलते टटोलते हाथी के समीप आये। आकर एक अन्धे ने हाथी की पूंछ पकड़ कर इस प्रकार विचार किया कि हाथी डडे के सदृश है। दूसरे अन्धे ने हाथी का पैर छुआ तो वह समझ बैठा कि हाथी खम्भे के समान होता है। तीसरे ने हाथी की सूंड जा टटोली तो उसने समझ लिया कि हाथी केले के पेड़ की तरह होता है। चौथे अन्धे ने हाथी का दाँत पकड़ा उसने समझ लिया कि हाथी का आकार

दीवार में गड़ी हुई बहुत बडी खूंटी के समान होता है। पाँचवे अन्धे ने उसके पेट पर हाथ फेरा तो उसने समझा कि हाथी भैंस के पेट की तरह बडा लम्बा चौड़ा होता है, और छठे अन्धे ने हाथी का कान पकडा, उसने समझ लिया- कि हाथी अनाज फटक कर साफ करने वाले सूप के समान होता है। इस प्रकार अन्धों ने अपने हृदय मे हाथी के प्रति भिन्न २ आकार धारण कर आपस मे बात करते हुए अपने २ हाथों से टटोलकर जाने हुए आकार प्रकार को ही सत्य जानकर दूसरे अन्धो की जानी हुई हाथी की शक्ल को असत्य समझने लगे। फिर वे छहो अन्धे परस्पर झगडने लगे,—दूसरो को झूठा कहने लगे। उस समय वहाँ एक सज्जन आये। उन्होने उन अन्धो का झगड़ा सुना तब उन अन्धो को शान्ति से समझाया कि हे सूरदासो! जैसे तुम्हारे शरीर मे, कान, नाक, दांत, पेट, पैर आदि अग है, सब अगो को मिलाकर तुम्हारा शरीर बना हुआ है, उसी तरह हाथो के भी सब अग होते हैं। उसके ४ पैर होते हैं, और सामने सूंड होती है पीछे पूंछ होती है। इतना अन्तर मनुष्य से है। तुम सबने उसके एक एक अग को हाथ से छुआ है, इसलिए तुम उसको उतना ही हाथी समझ रहे हो। तुम सब का जानना सत्य हो सकता है यदि 'ही' के स्थान पर 'भी' लगा दो। यानी हाथी पैरो की अपेक्षा खम्भे सदृश है। और हाथी सूंड की अपेक्षा केले के पेड सा है। इस तरह "ही" लगाना छोडकर अपनी बात मे "भी" लगाकर कहोगे तो तुम सब सच्चे हो जाओगे।

उक्त सज्जन की बात सुनकर उन अन्धों ने अपनी समझ ली और अपना २ एकान्त हठ छोड़ दिया। उनका आपसी झगडा मिट गया। इस प्रकार ससार के मत मतान्तर पृथक पृथक एकान्त हठ पकडकर दूसरे को झूठा बतलाकर परस्पर झगडते हैं बहुत वाद-विवाद करते हैं। यदि स्याद्वाद के दृष्टि-कोण को लेकर चलेंगे तो आपसी झगडा दूर हो जावेगा वहाँ उनको पदार्थों का सर्वांशज्ञान भी होने लगेगा।

इस प्रकार अनेकान्त सिद्धान्त संसार के समस्त आपसी वाद-विवादों को दूर कर देता है। इसलिए हर मनुष्य को (अनेके अन्ताः धर्मा. यस्मिन स अनेकान्त) इस अनेकान्त सिद्धान्त को जानने की आवश्यकता है।

कैवल्य एवं आत्मज्ञान का स्वरूप संत संत तुलसीदास के अनुसार–

ज्ञानक पंथ कृपाणक धारा, परत खगेश होय नहिं बारा।
जो निर्विघ्न पंथ निर्वहई, सो कैवल्य परद पद लहहिं॥

अर्थात–ज्ञान का मार्ग तलवार की धार के समान है। जिसमे जरा भी छूने पर सभी स्वाहा हो जाता है। जो ज्ञान के मार्ग में निर्विघ्नता पूर्वक चलता रहता है। वह विनय से परम पद को पाता है।

क्योंकि यह आत्म ज्ञान दृष्टि को ही गोचरीय, है, भौतिक दृष्टि को गोचर नहीं है। जब तक हम पारमार्थिक

नहीं चलते हैं। तब तक हमें परमात्मा के सर्वज्ञत्व का अनुभव होना कठिन है। परमात्मा प्रकाश मे योगिंदु सूरि कहते है कि

वेयहिँ सत्थहिँ इंदियहिँ जो जिय मुणहु ण जाइ।
णिम्मल-झाणहँ जो विसउ सो परमप्पु अणाइ ॥२३॥

अर्थात्—सर्वज्ञ (केवली) की दिव्य वाणी से महामुनियों के वचनो से, तथा इन्द्रिय और मन से भी जो शुद्धात्मा जाना नहीं जाता। वेद, शास्त्र, शब्द अर्थ स्वरुप हैं, आत्मा शब्दातीत हैं। इन्द्रिय मन विकल्प रुप हैं और मूर्तिक पदार्थ को जानते हैं। आत्मनिर्विकल्प है। आत्मा ध्यानगम्य है परन्तु शास्त्र गम्य नही है। शास्त्र सुनना तो ध्यान का उपाय है। इससे सिद्ध होता है कि हमे केवल, वेद पुराणो को पढने मात्र से ही आत्मा का अनुभव नहीं होता है। पढने पर हमें उन तत्व की बातो को हमारे अन्तरङ्ग मे उतारेंगे तभी आत्मानुभूति हो सकती है। कन्नड़ कवि रत्नाकर ने बहुत अच्छे ढग से इस प्रकार समझाया है कि—

शास्त्रं बंदोडे शांति सैरणे निगर्व नीति मेल्वातु मुक्ति।
स्त्रीचिन्ते निजात्म चिन्ते निलवेल्कंतलदा शास्त्रादि ॥
दुस्त्रीचिन्तने दुर्मुखं कलहमुं गर्वं मनंगोडोडा
शास्त्रं शस्त्र मे शास्त्रि शस्त्रि कनला रत्नाकरा
धीश्वरा ॥७४॥

अर्थात्—हे रत्नाकराधीश्वर विद्वान शास्त्र का ज्ञान होने

पर शांति सहन-शीलता, प्राप्त करने वाला हो, अहंकार रहित धर्म भावना से युक्त हित. मित प्रिय वचन,, बोलने वाला हो, मोक्ष–चितन निजात्मचिन्तन करने वाला होना चाहिये। यदि ऐसा नहीं हो, शास्त्री एव विद्वान् कहलाने वाले दुष्ट स्त्रियों का चिन्तम करे तो क्रोधादि कषायो से युक्त मुख वाले हो तो जिसके मन मे हमेशा झगडने का तथा अहंकार का भाव विद्यमान हो तो वह शास्त्र ज्ञान शस्त्र [तलवार]-चाकू आदि के समान है। उस शास्त्र को जानने वाले विद्वान शस्त्रधारी ही है। जिस प्रकार शस्त्रधारी तीव्रकषायोदयात् स्वपर अहित कर्ता बनता है उसी प्रकार शास्त्री पंडित भी कषाय के वसात् स्वपर अहित कर्ता बनता है। इस विषय पर सन्त कबीर ने कहा है कि—

"पढ पढ के पथरा भयो, लिख लिख भयो ईंट,
कबीरा आतम ज्ञान की लगी न एकऊ छींट ।।

सारांश यह है कि—पढ पढ के पत्थर के सदृश—मजबूत हो गया लिख लिख कर ईंट के समान शास्त्रो का ढेर लग गया तो भी एक बूंद प्रमाण भी आत्मा की अनुभूति नहीं हुई और कहते हैं कि—

"एक से सब कुछ होत है सब से एक न होय,
जब तक एक न जान ही सब जाने क्या होय,
चाहे समझो पलक मे, चाहे जन्म अनेक ।
जब समझो तब समझ हो, घट मे आतम एक ।।

अर्थात्—सारी दुनियाँ का ज्ञान कर लिया किन्तु अपनी आत्मा को नहीं जाना तो कुछ भी नहीं जाना ! मतलब आत्म-ज्ञान हुआ तो सब कुछ हुआ। जब तक अपनी आत्मा को नहीं जाना तो सारे दुनियाँ को जानने से क्या हुआ ?

तुम इस आत्मा को एक बार की आँख के टमकार मे जितना समय लगेगा उतने समय मे इस आत्मा को समझ लो या अनेक बार जन्म मरण करने के बाद समझ लो। समझना तो इस शरीर मे स्थित आत्मा को ही है। एक फिलासिफर ने भी कहा है कि "Tomorrow Never comes" कल कभी नहीं आता। मतलब जिस समय सुअवसर प्राप्त हुआ उस समय कल करने की बात करे तो फिर वह अवसर मिलना कठिन है और कहते है कि "It is useless to cry ove spilt the milk

अर्थात्—अब पछताचे तो क्या हुआ जब चिढिया चुग गई खेत ! इससे सुअवसर मिलने पर अपने शक्ति अनुसार व्रतादि धारण करने की शिक्षा मिलती है। और कहते है कि 'Ill got ill spent–जैसा आया वैसा गया यदि शक्ति का सदुपयोग नहीं किया तो आगे सद्‌गति पाना भी दुर्लभ है। और कहते हैं कि "Think twice be for you speak" यह तो निश्चय है कि पहिले अपने शक्ति को तोलकर दुसरे को उपदेश देना चाहिये आप विषयानुरागी बनकर दूसरे को आत्म ध्यान करने के लिये बोलने वाले का भाषण सार्थक नहीं होते क्योकि साधना के अभाव मे उसकी वाणी का असर नहीं पडता है। बिना साधक (गुरु) की सगति के साधना नही हो सकती है। कहा भी है कि No gain 'with out pain' बिना सेवा के मेवा नहीं इस संसार मे प्रापञ्चिक या पारमार्थिक दोनो व्यवहार मे सेवा

करनी पडती है, तभी मेवा या सुख मिलता है।

जैसे राजादि की सेवा से इन्द्रिय सम्बन्धी भोग मिलता है महात्मा त्यागियो की सेवा से त्याग भावना प्रकट होकर आत्मानुभूति से वास्तविक सुख मिलता है। यहा भोगियों की सेवा से योगियो की सेवा श्रेष्ठ है। कहा भी है

',राजेश्वरी तू नरकेश्वरी, तपेश्वरी तू स्वर्गेश्वरी'' ।

विसयानुरागी यह राजा लोग मरकर दुर्गति के पात्र बनते हैं तथा धर्मानुरागी साधु सज्जन मरकर स्वर्गादि उत्तम स्थान को प्राप्त करते हैं। इससे सिद्ध होता है कि भोगी त्यागी बनकर ही आत्मानुभूति को प्राप्त करता है। हम त्यागी हो या भोगी हो जब तक ज्ञानावर्ण दर्शनावरण कर्म के बन्ध के मूल कारणो को नहीं दूर करेंगे तब तक हमे आत्मानुभूति ईश्वरीय सुख दुर्लभ है। वह कारण उमास्वामी ने मोक्ष-शास्त्र अ. ६-१० सूत्र मे बताया है कि—

तत्प्रदोषनिह्नवमात्सर्यान्तराया साद्नोपघाता ज्ञान दर्शनावरणयोः।

अर्थात्—किसी धर्मात्मा के द्वारा की गई तत्वज्ञान की प्रशसा नहीं सुहाना और ईर्ष्या करना प्रदोष है। जानते हुए भी किसी कारण से ज्ञान को छिपाना निह्नव है अपने शास्त्रज्ञान होने पर भी दूसरे को इसलिए नहीं बताना कि यदि यह जान जावेगा तो मेरे बराबर हो जावेगा यह मात्सर्य है। किसी के ना । मे विघ्न डालना अन्तराय है। दूसरे के द्वारा प्रका-

शित किये जाने वाले ज्ञान को रोक देना आसादन है। प्रशस्त ज्ञान मे दोष लगाना उपघात है। इन दोषो से बचकर "वाचना पृच्छनानुप्रेक्षाम्नाय धर्मोपदेशा.।" अर्थात्–निर्दोष शास्त्रों को पढना, सशय दूर करने के लिए उन शास्त्रो मे लिखित तत्त्व सम्बन्धित चर्चा करना, जाने हुये पदार्थों का वार २ चितवन करना और निर्दोष उच्चाटन करते हुये पाठ करना और धर्म का उपदेश करना। इस प्रकार की प्रवृत्ति से हमारे अन्दर उपस्थित अनाधि निधन अज्ञान की निवृत्ति होकर मोक्ष मार्ग मे प्रवृत्ति होते हुये क्रमेण शास्त्रज्ञान के वाद आत्मज्ञानी वनने मे कोई सदेह नहीं है। इसलिये हमे—आगम की सच्ची बातों पर श्रद्धान कर उन वातो को अपने जीवन मे उतारना चाहिये प्रथम मे हमे अनेकान्त-स्याद्वाद को देखना चाहिये। जो धर्म की विशेषताएँ परस्पर विरुद्ध प्रतीत होती है (जैसे जो पुत्र है वह पिता कैसे हो सकता है। जो पिता है वह पुत्र कैसे हो सकता है।) इत्यादि विशेषताऐं एक ही पदाथ मे ठीक सही तौर से पाई जाती है। पदार्थों की इस अनेकरूपता धर्मात्मकता का वतलाने वाला सिद्धान्त अनेकान्तवाद कहलाता है।

एकेनाकर्षति श्लथयति वस्तुतत्त्वमितरेण।
अन्तेन जयति जैनो नीतिर्मन्थाननेत्रमिव गोपी॥

(पु० सि० २२५)

आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी कहते हैं कि—

जिस प्रकार दही विलौने वाली ग्वालिनी मथानी की रस्सी को एक हाथ से खींचती है दूसरे से ढीली कर देती है, और दोनों की क्रिया से दही मक्खन वनने रूप कार्य की सिद्धि करती है।

उसी प्रकार जिनवाणी ग्वालिनी सम्यक्दर्शन से तत्त्व स्वरूप को अपनी ओर खींचती है, सम्यक्ज्ञान से पदार्थ के भाव ग्रहण करती है। और दर्शन ज्ञान की आचरण रूप क्रिया अर्थात् सम्यक् चारित्र से परमात्म पद की सिद्धि करती है।

जिस समय यह आत्मा सम्यक् दर्शन से तत्त्व को मानकर श्रद्धान करता है। उस समय सम्यक्ज्ञान को देता है। और जिस समय सम्यक् ज्ञान को मुख्य मानकर के भाव को ग्रहण करता है, उस समय सम्यक्चारित्र को कर देता है। और जब सम्यक् चारित्र को मुख्य मानकर मे लीन हो जाता है, उस समय सम्यक्दर्शन, ज्ञान गौण जाता है।

जैनमत एवं सप्तभंगी विवेचन

इसी तरह जैन मान्यतानुसार पदार्थ के किसी धर्म को और अन्य धर्म को गौण करके विचार करने से अनन्त इस अनेकान्तवाद से तत्त्व का ठीक निर्णय होता है।

अब सप्तभंग स्याद्वाद के विषय मे सारांश में वर्णन करते हैं।

भङ्ग शब्द का प्रकार लहर विघ्न भांग आदि अनेक हैं। यहां "प्रकार" अर्थ में लिया गया है यह प्रकार (भं आदि सात तरह के होने से इन सातो भङ्गों के समुदाय सप्तभंगी कहते हैं। इनमें स्यात् पद लगाकर उन सातभंग नाम यों हुए। १. स्यात् अस्ति २. स्यात् नास्ति ३. स्यात्

नास्ति ४. स्यात् अवक्तव्य ५. स्यात् अस्ति अवक्तव्य ६. स्यात् नास्ति अवक्तव्य ७ स्यात अस्ति नास्ति अवक्तव्य। प्रत्येक वस्तु अपने दृष्टिकोण से द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा अस्तित्व रूप होती है। १. जैसे जीव चेतन है २. और प्रत्येक वस्तु अन्य दृष्टि कोणो की अपेक्षा अभाव नास्तित्व रूप होती है। जैसे अन्य जड़ पदार्थ की अपेक्षा अचेतन नही है। ३. दोनो दृष्टि कोणो को क्रम से कहने पर वस्तु अस्तित्व तथा अभाव रूप होती है। जैसे जीव चेतन है अचेतन नही ४. परस्पर विरोधी दोनो दृष्टि कोणो से एक साथ वस्तु वचन द्वारा कही नही जा सकती। जैसे जीव चेतन तथा जड अचेतन की युगपत अपेक्षा कुछ नही कहे जा सकते। ५. जीव युगपत कहने की अपेक्षा अवक्तव्य होते हुए भी अपने दृष्टि कोण से होती है जैसे जीव यद्यपि चेतन तथा अचेतन की अपेक्षा एक ही शब्द द्वारा अवक्तव्य हैं फिर भी दर्शन, ज्ञान, चारित्र से युक्त परमात्मा शक्ति की अपेक्षा चेतन है। ६. वस्तु अवक्तव्य होते हुए भी अन्य दृष्टि कोण से नहीं रूप है। जैसे जीव चेतन तथा जड की अपेक्षा अवक्तव्य होते हुए भी अचेतन की अपेक्षा चेतन नहीं है ७. परस्पर विरोधी दृष्टि कोणो से युगपत एक साथ एक ही शब्द द्वारा अवक्तव्य होते हुए भी वस्तु क्रमश. उन परस्पर विरोधी दृष्टि कोणों से ही अरूपी होती है। जैसे जीव चेतन और अचेतन की अपेक्षा युगपत रूप से कुछ भी नहीं कहे जा सकते हैं। किन्तु युगपत की अपेक्षा अवक्तव्य होते हुए भी क्रमश. जीव चेतन ही है बल्कि अचेतन जड रूप नहीं है। इस प्रकार सप्तभगी प्रत्येक पदार्थ के विषय मे लागू होती है।

इस प्रकार जो आत्मा नामक वस्तु है वह स्वय अनेकान्त

रूप है। मतलब अनंतधर्म समूह ही आत्मा है। इस अनेकान्तमय आत्मा को जो सतप्भंग के द्वारा जितना जानता है, उतना कह नहीं सकता इसका कारण यह है कि जितने ज्ञान के अंश हैं उन ज्ञान अंशों के वाचक न तो उतने शब्द है और न उन सब अशो को कह डालने की शक्ति जीभ मे है। जैसे हम इस इन्द्रिय सम्बन्ध से होने वाले सुख दुख को अनेक वार भोग चुके हैं, अभी भी भोग रहें हैं, आगे भी भोगेगें। किन्तु हमने जितना अनुभव किया है उन्हे वचन के द्वारा हम कह नही सकते हैं। उसी प्रकार तीर्थंकरादि महा पुरुष जितना केवलज्ञान से आत्मा को जानते थे, और उन्हें कितना सुख और आनन्द प्राप्त हुआ था? यह भी वचनातीत है। वे सर्वज्ञ जितना ... पदार्थों को युगपत जानते थे, उसके अनन्तवें भाग गणधर अपने हृदय मे धारण कर पाते हैं। जितना विषय धारण कर ... हैं उसका अनन्तवा भाग शास्त्रो मे लिखा जाता है। इस ... जानने और उस जाने हुए विषय को कहने में महान अन्तर है। एक साथ जानी हुई बात को ठीक उसी रूप मे एक साथ कह सकना असम्भव है। इसलिए जैन सिद्धान्त मे प्रत्येक वाक्य के साथ (स्यात्) शब्द लगाने का निर्णय दिया है।

स्याद्वाद का परिचय

'स्यात' शब्द का अर्थ 'कथञ्चित् यानी-किसी दृष्टिकोण से या किसी अपेक्षा से है। अर्थात् जो बात कही जा रही है। वह किसी एक अपेक्षा से (किसी एक इच्छित दृष्टिकोण से कही जा रही है। जिसका अभिप्राय यह प्रकट होता है कि यह विषय अन्य दृष्टिकोणों से या अन्य अपेक्षाओं से अन्य अनेक प्रकार भी कहा जा सकता है। जैसे राम दशरथ की (स्यात्) अपेक्षा पुत्र हैं, सीता की अपेक्षा पति हैं, लक्ष्मण की अपेक्षा भाई है, जनक की अपेक्षा दामाद है, और लवणाकुश की अपेक्षा पिता है। इस तरह 'स्यात्' शब्द लगाने से उस बड़ी भारी त्रुटि का ठीक सुधार हो जाता है, जो उपर्युक्त पाँच बातों मे से एक ही बात कहने पर होती है। यानी राम 'पुत्र' तो है किन्तु वे सर्वथा (हर तरह से) पुत्र ही नहीं है, वे पति भाई पिता दामाद आदि भी तो हैं। केवल दशरथ की अपेक्षा से पुत्र ही हैं। इस अपेक्षा शब्द से उनके अन्य दूसरे पति, भाई, पिता दामाद, आदि सम्बन्ध सुरक्षित रह जाते हैं इस प्रकार (स्यात्) पद लगा देने से संसार के सभी सैद्धान्तिक विवाद शात हो जाते हैं।

अनेकान्तवाद और सप्तभङ्गी, स्याद्वाद के रूपान्तर है। स्याद्वाद एक वास्तविक अकाट्य सिद्धान्त है किन्तु यह दार्शनिक तर्क-विषय है, अत. कुछ कठिन है। बड़े बडे विद्वान भी इसका ठीक स्वरूप न समझ सकने के कारण इसे गलत ठहराने का यत्न करते हैं। महात्मा गाँधी लिखते है कि "जिस प्रकार स्याद्वाद को मै जानता हूँ, उसी प्रकार मैं उसे मानता हूँ। मुझे यह

अनेकान्त बडा प्रिय है। इससे सिद्ध होता है कि महात्मा गांधी खुद जैन सिद्धान्त के मर्मज्ञ थे। आपने भारत के सिवाय अन्य देशों मे भी अहिंसा परम धर्म कहकर आज विज्ञान मद मे डूबे हुए जीवो को अपने सदुपदेश से जगाया था। किन्तु अज्ञान से अधे हुए ये विश्व के प्राणी महात्माओं के वचनों को झेल नहीं पाते हैं। कारण यह है कि इनके सस्कार विषय-कषायों से लिप्त हैं। और रूढिवशात् मूर्खों की संगति से तथा अनादि मिथ्यात्व कर्मोदयात् जिनवाणी (ईश्वर के सदुपदेश) से वञ्चित हैं। कहते हैं कि—

"विद्वान से विद्वान मिले दो दो बातें,
गधे से गधे मिले दो दो लातें।

अर्थात्—ज्ञानी से ज्ञानी मिले तो दो दो तत्त्व की बातें मिलेगी। मूर्ख से मूर्ख मिले तो बात के साथ लात भी मिलेगी कारण इन्हे गुरु मुखान्तर ज्ञान नहीं मिला। कहा भी है कि—

पुस्तकं प्रत्याधीतं नाधीतं गुरुसन्निधौ।
न शोभते सभामध्ये जारगर्भाइवस्त्रियः॥

अर्थात्—जिसने केवल किताब की पढाई की किन्तु गुरु सानिध्य मे शिक्षा प्राप्त नहीं की वह सभा के बीच मे शोभा को नहीं पाता है, जिस प्रकार जार से हुई स्त्री का गर्भ शोभनीय नहीं होता है। इसका मतलब पढाई नहीं करने की बात नहीं।

पुस्तकेषु या विद्या परहस्तेषु च यद्घनं।

उत्पन्नेषु कार्येषु न सा विद्या न तत् धनं ॥

अर्थात्—पुस्तको मे विद्या होवे, दूसरे हाथ मे धन होवे तो कार्य की उत्पति मे न विद्या है न धन है। इसलिये गूरु मुखान्तर ही जिसने ज्ञान प्राप्त किया है वह धन्य है। वह गुरु भी वैसे ही हैं। रत्नाकर कवि कहते हैं कि—

श्रुतं नोल्प तदर्थमं तिलिव तन्मार्यादियोल्पोप सु-
व्रतमं पालिपकाममं तुलिव मायाजाड्यमं भाडिपुन्नत
कारूण्य दोलाल्व जीवहितमं पेल्वातने मद्गुरु श्रुतयो-
गीश्वरर्निदु नालिन शिवं रत्नाकराधीश्वरा ॥ १०७॥

अर्थात्—आगम को देखकर उसका अर्थ समझने वाले, उस आगम मार्ग मे चलने वाले, परमोत्कृष्ट अहिंसादि व्रतो का परिपालन करने वाले भोगाभिलाषा को नष्ट करने वाले अज्ञान प्रमादादि को अपने ज्ञान तप के द्वारा दूर करने वाले दयामय जीवो को हितकारी उपदेश देने वाले जो साधु है वे मेरे गुरु हैं वे मेरे गुरु आज "श्रुत योगीश्वर" कहलाने वाले ही कल के ईश्वर हैं।

अर्थात्—अनेकान्त स्याद्वाद के मर्म को जानने वाले स्वपर हितकारी गुरु ही आगे ईश्वर बनने मे समर्थ हैं। एकान्त वादी भी इस संसार मे उलझा रहेगा।

आचार्य अमृत चन्द्र स्वामी ने कुन्दकुन्द आचार्य कृत समय प्राभृत मे स्याद्वादधिकार मे अनेकान्त के यथार्थ बोध के लिए

१४ भङ्गों का निरूपण किया है। इन्हे १४ कलश भी कहते हैं। उसमें दूसरे भङ्ग में कहते हैं कि (ये १४ भङ्ग सप्तभङ्गी के ही अन्तर्गत है।)

विश्वं ज्ञानमिति प्रतर्क्य सकलं दृष्टा स्वतत्वाशया।
भूत्वा विश्वमयः पशुः पशुरिव स्वच्छन्दमाचेष्टते॥
यत्तत्त त्परूपतो न तदिति स्याद्वाददर्शी पुनः।
विश्वाद्भिन्नमविश्वविश्वघटितं तस्य स्वतत्वं स्पृशेत्

॥२४॥

अर्थात्—विश्व ज्ञान है अर्थात् समस्त ज्ञेय ज्ञानमय है ऐसा विचार कर समस्त जगत को निज तत्व की आशा से देख कर विश्वरुप हुआ। अज्ञानी एकान्तवादी, पशु के समान स्वच्छन्द चेष्टा करता है परन्तु स्याद्वाद को देखने वाला ज्ञानी पुरुष जो तत् हैं वह पर रुप से तत् नहीं है अर्थात् ज्ञान पर रुप से ज्ञान नहीं हैं किन्तु स्वरुप से ज्ञान है, वह ज्ञान विश्व से भिन्न है और समस्त विश्व से घटित नहीं हैं अर्थात् समस्त ज्ञेय वस्तुओं से घटित होने पर ज्ञेय रुप नहीं है इस तरह ज्ञान के स्वतत्व निजस्वरुप का अनुभव करता है।

भावार्थ—संसार मे समस्त पदार्थ ज्ञान के विषय हैं, इसलिये समस्त विश्व ज्ञान है ' ऐसा समझ एकान्तवादी अपने आपको विश्वमय मानता है और समस्त संसार को स्वतत्व मानकर पशु की तरह स्वच्छन्द प्रवृत्ति करता है। परन्तु स्याद्वादी उस तत्व के निज स्वरुप को अच्छी तरह समझता है —

जानता है कि ज्ञान स्वरूप की अपेक्षा तत्‌रूप है। पर रूप की अपेक्षा तत रूप (तद्रूप) नहीं है। इसलिए ज्ञान ज्ञेयों के आकार परिणमता हुआ भी उससे भिन्न है। यह अतत्स्वरूप का भङ्ग है।

साराश यह है कि जीव विश्वमय नहीं हो सकता, ज्ञान जीव द्रव्य के सिवाय अन्य द्रव्य मे नहीं पाया जायेगा।

यद्यपि जीव, धर्म, अधर्म-आकाश-काल द्रव्यवत् अमूर्तिक रहते हुए भी चैतन्यात्मक है, ज्ञान दर्शनादि अनत गुणों का भडार है। जो ज्ञानी जीव है, अपने स्वभाव मे रहने के कारण उन्हें पर द्रव्य से कोई हानि नहीं पहुंचती है। तो भी एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य के साथ सम्बन्ध जरूर रहता है। यदि सम्बन्ध नहीं होता तो ईश्वर भी लोकाकाश उल्लघन कर सकता था। विश्वधर्म को कहने का तात्पर्य यह है कि हर द्रव्य अपनी २ सत्ता मे रहते हुए अपने स्वभाव धर्म को नहीं छोड़ते हुए भी एक द्रव्य दूसरे द्रव्य से निरपेक्ष रूप नहीं रहने के कारण द्रव्य के समूह को विश्व कहा है। स्वभाव की अपेक्षा धर्म कहा. इस प्रकार विश्व धर्म नाम से प्रचलित है इसके बाद 'विश्व धर्म-अहिंसा कहने का तात्पर्य यह है कि एक ज्ञायक स्वभाव वाला यह जीव द्रव्य, पुद्‌गल-द्रव्य के सयोग से अनादि काल से तीन प्रकार के (द्रव्य कर्म-भाव कर्म नो कर्म) कर्मजन्य पुद्‌गल परमाणुओं के समूह मे लिप्त होने से विभावी कहा गया है। इन्हे हिंसक कहा है। जो जीव ज्ञायक स्वभाव मे स्थित है उन्हें अहिंसक कहा है। यह हिंसा-अहिंसा का सम्बन्ध जीव द्रव्य से ही है। अन्य द्रव्य जो जड हैं, उन्हें हिंसा-अहिंसा से कोई मतलब नहीं है। जीव द्रव्य से ही अन्य द्रव्य का और अहिंसा का परिज्ञान हुआ है।

कारण यह है कि—यह चेतन आत्मा मे ही, सुख-दु ख पुण्य-पाप हेय उपादेय, ज्ञान अज्ञान का अनुभव होने की शक्ति विद्यमान होने से ही वह जीव कालान्तर में अपनी शक्ति को पहिचानने की योग्यता को प्राप्त कर, साधना पूर्वक विभाव परिणति को हटाकर अपने स्वभाव मे स्थिर होने मे जो कारण हैं उसी को ज्ञानी आत्मा द्वारा अहिंसा कहा गया है, इस अहिंसा धर्म के आधार से ही जीव अपने निज शक्ति को पहचान कर पुद्गल के सयोग से छुटकारा पाने के निमित्त से विश्व का धर्म-अहिंसा कहा है । हिंसा से बचने के लिये जीवो को इस मूलतत्व अहिंसा को अपनाना चाहिये । इस विश्व धर्म-अहिंसा तत्व को समझने के लिए बताया हुआ सप्तभङ्गी के अन्तर्गत १४ भङ्ग का नाम निम्न प्रकार है तत्-अतत् के २ भङ्ग एक अनेक के २ भङ्ग सत् असत् के द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षा ८ भंग नित्य अनित्य के २ भग । इस प्रकार सब मिलाकर १४ भग होते हैं इन सभी भगों मे यह बताया गया है कि एकान्त से ज्ञान मात्र (आत्मा का) अभाव होता है । और अनेकान्त से आत्मा जीवित रहती है । अर्थात् एकान्त से आत्मा का यथार्थ बोध नहीं होता है और अनेकान्त से यथार्थ बोध होता है ।

विश्व धर्म और गीता

(भगवत्गीता में श्रीकृष्ण महाराज ने अर्जुन से कहा है कि)

श्रुतिविप्रतिपन्नातेयदास्थास्यति निश्चला !
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि। ।५३।।

स्थित प्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव !
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत् व्रजेत किम् ।।५४।।

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोत्रतान् !
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ।।५५।।

अर्थात्—हे अर्जुन तेरी अनेक प्रकार के सिद्धान्तों को सुनने से विचलित हुई बुद्धि परमात्मा के स्वरुप मे अचल और स्थिर हो जायगी तब तू समत्व रुप योग को प्राप्त होगा। उस समय अर्जुन ने पूछा "हे केशव'! समाधि मे स्थित स्थिर बुद्धि वाले पुरुष का क्या लक्षण है? और स्थिर बुद्धि वाला पुरुष कैसे बोलता है? कैसे बठता है? कैसे चलता है? उसके उपरान्त श्रीकृष्ण महाराज बोले कि "हे अर्जुन! "जिस काल मे यह पुरुष मन मे स्थित सम्पूर्ण कामनाओं को त्याग देता है, उस समय आत्मा से ही आत्मा मे सतुष्ट हुआ स्थिर बुद्धि वाला कहा जाता है।"

तात्पर्य यह है कि अनेक सिद्धांत के चतन मनन श्रवरण के समय आत्मा की अवस्था सविकल्प रुप ही है। इन श्रुत ज्ञान के आधार से आत्मा को ईश्वरत्व का ज्ञान और श्रद्धा तो होगी परंतु वह पूर्णतया शुद्धोपयोगी नहीं बन सकता क्योंकि आत्म ध्यान गम्य हैं शास्त्र गम्य नहीं है। चतुर्थ गुणस्थान वर्ती इंद्र भी द्वादशांग के पाठी हैं वहां स्वरूपाचरण चारित्र की अपेक्षा धर्म ध्यान रूपी ध्यान के निमित्त से अंश रुप मे शुद्धोपयोग की भूमिका मानी है। छठे गुण स्थानवर्ती मुनि भी कोई कोई श्रुत केवली भी होते हैं। वे भी कुछ अंश रुप मे शुद्धोपयोगी

हैं। ७ वें गुण स्थान से निर्विकल्प ध्यानावस्था प्रारम्भ होकर पूर्ण परमात्मावस्था तक १४ गुण स्थान पर्यंत रहेगा। इसलिए आत्मा निर्विकल्प ध्यान से ही अनुभव गम्य है। यह बात जैन सिद्धात के कथन से पूर्णतया मिलती है।

इस प्रकार देव गुरु शास्त्र का वास्तविक स्वरूप का ज्ञान कर क्रमश शुद्धात्मा की अनुभूति से युक्त होने से स्थिर बुद्धि वाला कहा जाता है, यह सिद्धात श्री कृष्ण भी जानते थे और मानते थे। अब आगे विश्व धर्म की अवधि पर निरूपण करेगें।

विश्व धर्म अहिंसा और कुरान

विश्वधर्म अहिसा के विषय पर कुरान मे भी निम्न प्रकार के प्रमाण के द्वारा मान्यता पायी जाती है,

२२६. एक मनुष्य बचाना अर्थात् जगत को-बचाना

१. हमने इस्रायल—पुत्रो को आदेश दिया कि जिसने किसी मनुष्य की किसी प्राण हानि के बदले या पृथ्वी मे युद्ध छेड़ने के कारण के अतिरिक्त अन्य कारण से हत्या की तो उसने मानो, अखिल मानव–जाति की हत्या कर दी। और जिसने किसी प्राण को बचाया, उसने मानो अखिल मानव–जाति को जीवन प्रदान किया (५–३५)

२२७. कलह न फैलाओ

१. अपने प्रभु को पुकारो, गिड़ गिड़ाते हुए और मौन पूर्वक

निस्सन्देह वह मर्यादाओ का अतिक्रमण करने वालों को पसंद नहीं करता।

२२८. द्वेष करने वालो पर भी अन्याय न करो—

१ हे श्रद्धावानो! ईश्वर के लिए सत्य पर स्थिर रहने वाले तथा न्याय की साक्ष्य देने वाले बनो। किसी का द्वेष तुम्हें इस प्रकार उत्तेजित न करे कि तुम न्याय न कर सको। न्याय करो यही धर्म परायणता से अधिक निकट है। ईश्वर के प्रति अपना कर्तव्य पूरा करो निस्सन्देह ईश्वर तुम्हारे कृत्यो से अवगत है। (५-८)

२२९. मैत्री के लिए प्रस्तुत रहो—

१. यदि वह सन्धि को ओर झुकें, तो तू भी उसके लिए झुक जा और ईश्वर पर भरोसा रख। निस्सन्देह वही सर्व श्रुत सर्वज्ञ है।

२. और यदि वे तुझे धोखा देने की इच्छा रखते हो तो तेरे लिए ईश्वर पर्याप्त है। उसी ने तुझे अपनी सहायता से एव श्रद्धावानों के द्वारा बल पहुचाया।

३. और श्रद्धावानो के हृदय एक दूसरे से जोड़ दिये। यदि तू पृथ्वी मे जो कुछ है, सब व्यय कर डालता, तो भी उनके हृदयो को जोड़ न सकता। किन्तु ईश्वर ने उनके हृदय जोड़ दिये निस्सन्देह वह सर्वजित सर्व विद् है।

(७-६१-६३)

४७ न्याय से क्षमा श्रेष्ठ है

२३०. सहन करना श्रेष्ठ—

१. यदि बदला लो तो उतना ही जितना तुम्हें कष्ट दिया गया और यदि सहन करो, तो सहन करने वालो के लिए सहन करना ही अच्छा है।
२. तू सहन कर। तेरा सहन करना ईश्वर की ही सहायता से है। उनके लिए दु खी न हो और उनके कपट से व्यथित न हो।

३. निस्सन्देह ईश्वर उन लोगो के साथ है, जो उससे डरते हैं, और जो अच्छे काम करते हैं। (१६-१२६-१२८)

२३१. क्षमा करना श्रेष्ठ है—

१. वे लोग जब उन पर बहुत अत्याचार करते हैं, तो जवाब देते हैं।

२. "बुरे काम का बदला उतना ही बुरा है। फिर जो कोई क्षमा करे और सपरिवर्तन करे, उसका प्रतिफल ईश्वर के अधीन ही है। निस्सन्देह वह अत्याचारियो को पसद नहीं करता"। (४२-३९-४०)

४८ अहिंसक की निष्ठा

२३२. क्षमा एवं ईश्वराश्रय—

१. क्षमा करने का अभ्यास कर, सत्कृति देता जा, और

गंवारों से टल ।

२. यदि शैतान की छेड़ तुझे उकसाये तो ईश्वर का आश्रय माँग । निस्सन्देह वह सर्वश्रुत है सर्वज्ञ है ।

३. निस्सन्देह जो लोग ईश्वर के प्रति अपना कर्तव्य करते हैं, उनको शैतान की ओर से कोई विकार छू भी जाता है तो वे चौकन्ने हो जाते हैं । सो एकाएक उनकी आँखें खुल जाती हैं । (७–१९९–२०१)

२३३. बुराई का भलाई से प्रतीकार—

१. बुराई का प्रतीकार ऐसे बर्ताव से करो जो बहुत अच्छा हो, हम भली भाँति जानते हैं, जो ये बोल रहे हैं ।

२. और कहा हे प्रभो ! मैं तेरा आश्रय चाहता हूँ । शैतान की कुप्रेरणाओं से बचने के लिए ।

३. और हे प्रभो ! मैं तेरा आश्रय माँगता हूँ, शैतान मेरे पास न आये इसलिए । (२३–९६–९७)

२३४. हम क्षमा याचक, हम क्षमा करें

१. लोगों को चाहिए कि वे क्षमा करें और भूल जायें । क्या तुम नहीं चाहते कि ईश्वर तुमको क्षमा करे ? ईश्वर क्षमावान, व करुणावान् है । (२४–२२)

२३५. शत्रु भी मित्र होंगे

१. सत्कर्म एवं दुष्कर्म समान नहीं हो सकते । दुष्टता को

ऐसे बर्ताव से दूर कर, जो बहुत अच्छा हो। फिर एका-एक वह मनुष्य कि जिसके और तेरे बीच शत्रुता है, ऐसा होगा मानो वह तेरा सुदृढ मित्र है'

२. और यह बात उसको प्राप्त होगी, जो दृढ निश्चय है और यह बात उसीको मिलती है, जो बड़ा भाग्यवान है। (४१–३४–३५)

२३६. प्रेम कैसे प्राप्त होगा

१. निस्सन्देह जो श्रद्धा रखते हैं, और जिन्होंनेसत्य कृत्य किये हैं, उनमे वह कृपालु प्रेम निर्माण करता है (१९–९६)

४९ सहयोग-वृत्ति

२३७. पड़ोसी-धर्म

१. क्या तूने उस मनुष्य को देखा, जो न्याय के दिन को नहीं मानता ?

२. तो यही वह व्यक्ति है, जो अनाथ को धक्के देता है।

३. और वंचितों को अन्न देने के लिए लोगों को उत्साहित नहीं करता।

४. सो उन प्रार्थना करने वालो को धिक्कार।

५. जो अपनी प्रार्थना से असावधान है।

६. वे जो मिथ्याचार करते हैं।

७. और पड़ोसियों को दैननन्दिन वरतने की छोटी-छोटी चीजें भी नहीं देते। (१०७.१–७)

२३८. संयम एवं दया का पारस्परिक बोध

१. क्या हमने उसे दो आंखें नहीं दी ?

२. और जीभ और दो होठ ?

३. और दिखला दिये उसे दोनो मार्ग

४. तो वह घाटी नहीं चढा।

५. और तूने क्या जाना कि वह घाटी क्या है ?

६ बन्दी को मुक्त करना,

७ या भूख के दिन मे खाना खिलाना

८. सगे सम्बन्धी अनाथ को

९. तथा धूल मे पडे हुए अकिञ्चन को

१०. फिर उन लोगो मे सम्मिलित होना, जो श्रद्धा रखते हैं और परस्पर धीरज का बोध देते हैं, और परस्पर करुणा का बोध देते हैं। (९०–८–१७)

२३९. सत्य और धीरज का पारस्परिक बोध

१. शपथ है काल की।

२. निश्चय ही मनुष्य घाटे में है।

३. अतिरिक्त उन लोगों के, जो श्रद्धा रखते हैं और सत्कृत्य करते हैं, और परस्पर सत्य का बोध देते हैं एवं परस्पर धृति का बोध देते हैं। (१०३-१-३)

२४०. पारस्परिक सहायता

सत्कृति एवं संयम मे एक-दूसरे की सहायता करो। पाप एवं अत्याचार मे एक-दूसरे की सहायता न करो।

२४१. सत्कृतियो मे होड करो

चाहे उद्दिष्ट भिन्न ही हो प्रत्येक के लिए दिशा है, जिसकी ओर वह मुडता है। सो तुम भलाइयो की ओर बढो, दौडो। जहाँ कहीं तुम होंगे, ईश्वर तुम सबको इकट्ठा कर लायेगा। निस्सन्देह ईश्वर सर्व-कर्म-समर्थ है।

(२-१४७)

५० असहयोग

२४२. दुर्जनों की न मानो

१. तो तू कहना न मान, ईश्वर को न मानने वालों का।
२. वे चाहते हैं कि यदि तू नरम पड़े, तो वे भी नरम पडें।
३ और तू कहा न मान बहुत-सी शपथें खाने वाले नीच का,
४. जो दोषेक दृष्टि पिशुन है,
५. भले कार्य को रोकने वाला, मर्यादा का अतिक्रमण करने

वाला पापी है,

६. जो क्रूर और इन सबसे अधिक यह कि पल-पल में रंग बदलने वाला है।

७. और यह सब इस घमण्ड से कि वह सम्पत्तिवान् सन्तति-वान् है। (६८ ८-१४)

५१ अनिवार्य प्रतीकार

२४३. प्रतिकार के अभाव मे धर्म स्थान उध्वंस्व होते

१. उन लोगों को लडाई की अनुज्ञा दी जाती है जिनसे लड़ाई की जा रही है और इस कारण भी कि उन पर बहुत अत्याचार ढाये गये। निस्सन्देह ईश्वर उनकी सहायता करने मे समर्थ है।

२. उनको अन्याय से उनके घरों से निकाला गया केवल उनके इस कहने पर कि हमारा प्रभु ईश्वर है। और यदि ईश्वर लोगों को एक को दूसरे से न हटाता रहता, तो साधुओं के एकान्त स्थल, क्रिश्चयनो के पूजा स्थान यहुदियों के उपासना स्थान और मस्जिदें। जिनमे परमात्मा का नाम बहुत लिया जाता है, ढाये जाते निस्सन्देह परमात्मा उसकी अवश्य सहायता करेगा, जो उसकी सहायता करेगा निस्सन्देह परमात्मा बलशाली है सर्वजित है।

(२२-३९-४०)

२४४. धर्मरक्षणार्थ मर्यादित प्रतिकार—

१ जिन लोगों ने ईश्वर के मार्ग मे घर द्वार छोड़ा फिर मारे गये या मर गये, उनको ईश्वर अवश्य अच्छी जीविका देगा। और निश्चय ही ईश्वर सबसे श्रेष्ठतर जीविका देने वाला है।

२ वह उन लोगों को अवश्य ऐसे स्थान में प्रविष्ट करेगा, जिसे वे पसन्द करेंगे निस्सन्देह ईश्वर सर्वज्ञ है सर्वसह है।

३. यह हुआ, और जो व्यक्ति बदला ले उतना ही जितना कि उसे सताया गया, उसे अवश्य सहायता देगा। निस्सन्देह ईश्वर दोषो को भूल जाने वाला तथा क्षमा करने वाला है।

(२२-४८-६०)

५२ रसना जय

२४५ एक अन्न से उकताना

१. जब तुमने कहा हे मूसा ! हम एक ही प्रकार के भोजन पर कदापि सन्तोष नहीं कर सकते सो अपने प्रभु से हमारे लिए प्रार्थना कर कि हमारे लिए वह उस वस्तु का निर्माण करे, जिसे भूमि उगाती है, अर्थात् साग, सब्जी गेहूँ, दाल, और प्याज। मूसा ने कहा : क्या तुम श्रेष्ठ (वस्तु) के स्थान पर कनिष्ठ (श्रेणी की वस्तु) लेना चाहते हो तो किसी शहर मे जा उतरो। जो कुछ तुम मांगते हो, वहाँ मिल जायगा। और फिर उन पर अपमान एव परवशता थोप दी गयी और वे ईश्वर के प्रकोप

के भाजन बन गये (२-६१)

२१ ब्रह्मचर्य

५३ पावित्र्य

२४६. कहता है मै पवित्र हूँ

१ क्या तूने उन्हें देखा, तो अपने-आपको पवित्र कहते हैं। (और इन पवित्रता की डींग मारने वाले को जो दण्ड होगा) उसमें खजूर की गुठली पर की रेखा के बराबर भी अन्याय न होगा (४-४६)

२४७. पावित्र्य ईश्वर की कृपा

१. हे श्रद्धावानों ! शैतान के पद चिह्नों का अनुसरण न करना, जो शैतान के पद-चिह्नो का अनुसरण करता है, तो निस्सन्देह शैतान निर्लज्ज एव अनुचित काम करने की आज्ञा करता है। और यदि तुम पर ईश्वर की दया एवं करुणा न होती तो तुममे से एक भी पवित्र न होता किन्तु ईश्वर जिसे चाहता है, और सर्वश्रुत एव सर्वज्ञ है।

(२४-२१)

२४८. सूक्ष्म दोष ईश्वरीय कृपा से टलेंगे।

१ जो बडे पापों से और वैषयिक बातों से बचते है, (सिवाय सूक्ष्म दोषो के) तो उनके लिये निस्सन्देह तेरा प्रभु व्यापक क्षमावान् है। और तुम्हें उस समय से वह भली भांति

जानता है, जब तुम्हें उसने भूमि से निर्माण किया और जब तुम अपनी माताओं के गर्भ मे थे। सो तुम अपना पावित्र्य न जतलाओ। वह भली भांति जानता है कि कौन सयमी एवं ईश्वर परायण है। (५३-३२)

२४९. अन्तर्बाह्य पाप टालो

१. बाहरी और भीतरी पाप छोड़ दो। जो लोग पाप कमाते हैं, उन्हे उनकी उस करतूत का फल अवश्य दिया जायगा। (६-१२०)

२५१. शुभाशुभ विवेक जागृत रखो

१. शपथ है जीव की और उसकी, जिसने उसको विकसित किया।

२. फिर उस जीव को शुभाशुभ विवेक की अन्तः प्रेरणा दी।

३. निश्चय ही वह मनुष्य साफल्य को पहुंचा, जिसने उसे विशुद्ध किया।

४. और असफल हुआ वह, जिसने उसका अवरोध किया। (९१-७ १०)

२५२. शील रक्षा

१. हे आदम पुत्रो! निस्सन्देह हमने तुमको वस्त्र दिये हैं, जो तुम्हारी लज्जा ढांकते हैं और जो शोभा भी है, पर-संयम का प्रावरण, श्रेष्ठतम प्रावरण है। ये ईश्वर के

संकेत हैं, जिससे कि ये लोग उपदेश प्राप्त करें।

२. हे आदम पुत्रो ! तुम्हें शैतान चरित्र भ्रष्ट करने के लिए न वहकाये, जैसाकि उसने तुम्हारे (सर्वप्रथम) माँ-वाप को स्वर्ग से निकलवाया, उनके कपड़े उनसे उतरवाये, जिससे कि उन्हे उनके लज्जा स्थान दिखाई दें। शैतान और उसका परिवार तुम्हें इस तरह देखते हैं कि तुम उन्हें नहीं देख सकते। निस्सन्देह हमने शैतान को उन लोगों का मित्र वना दिया, जो श्रद्धा नहीं रखते।

३. और वे लोग जव कोई वुरा काम करते है, तो कहते हैं कि हमने अपने वाप-दादाओं को इसी पद्धति पर चलते पाया है। और ईश्वर ने ही हमे ऐसा करने की आज्ञा दी है। निस्सन्देह ईश्वर वुरे काम की आज्ञा नहीं दिया करता। क्या तुम ईश्वर के विषय मे ऐसी वात कहते हो जिसका तुम्हें ज्ञान नहीं ? (७-२३-२८)

२५३. अनधिकृत सन्यास

१. फिर उन प्रेषितों के पश्चात् हमने क्रमशः प्रेषित भेजे और उनके पश्चात् हमने मरियम के पुत्र यीशु को भेजा और उसे एंजिल (न्यू टेस्टामेंट) प्रदान की। और यीशु के अनुयायियों के हृदयों मे मृदुता एवं करुणा उत्पन्न कर दी और उन्होंने संन्यास एव एकान्त जीवन अपनी ओर से चालू किया। उसे हमने उनके लिए आवश्यक नहीं किया था। परन्तु उन्होंने ईश्वर की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए वह किया फिर उसे जैसा निभाना चाहिए था, वैसा नहीं निभाया। फिर हमने उनमे से जो श्रद्धावान्

उन्हें उनका फल दिया। पर अधिकतर उनमें दुराचारी थे। (५७-२७)

२५४. ब्रह्मचारी जॉन (युह्मा) (यह्मा)

१. उप स्थान पर जक्रिया ने अपने प्रभु को पुकारा। कहा—हे प्रभो! मुझे अपने पास से पवित्र सन्तान प्रदान कर। निस्सन्देह तूही प्रार्थना सुनने वाला है।

२ जबकि वह उपासना-स्थान मे बैठकर उपासना कर रहा था, देव दूतों ने उसे पुकार कर कहा—ईश्वर तुझे शुभ सन्देश देता है कि तुझे जॉन (यह्मा) (नाम का पुत्र) होगा। वह ईश्वरीय वाणी को प्रमाणित करने वाला उदात्त, ब्रह्मचारी सन्देष्टा और सत्कृतिवान् होगा।

(३-३८-३९)

२५५. प्रभु का मान रखकर काम-नियमन

१. फिर जब आयेगी वह बडी विपत्ति।

२. उस दिन मनुष्य स्मरण करेगा जो प्रयत्न उसने किये थे।

३ और नरक उसके सम्मुख लाया जायगा कि वह उसे देखे

४. तो जिसने प्रभु से विद्रोह किया होगा।

५ और ऐहिक जीवन को अधिक मान्य किया होगा।

६ तो नरक उसका ठिकाना है।

७ और जो अपने प्रभु के सम्मुख खडे होने से डरा हो और उसने अपने मन की वासनाओ से रोका हो। तो निस्सन्देह उसका स्थान स्वर्ग है। (७९-३४-४२)

श्री श्री १०८ आचार्य विमल सागर जी महाराज

विश्व धर्म अहिंसा और ख्रिस्त मत

विश्व-धर्म-अहिंसा के विषय पर ख्रिस्त-धर्म मे भी निम्न प्रमाणों के द्वारा मान्यता पायी जाती है :—

ख्रिस्त का दीक्षा संस्कार

१. तव यीशु गलील से यरदन के किनारे पर यूहन्ना पास उससे बपतिस्मा लेने आया।

२. पर यूहन्ना यह कहकर उसे रोकने लगा कि मुझे तुझसे बपतिस्मा लेना चाहिए और तू मेरे पास (बपतिस्मा) लेने आया है ?

३ यीशु ने उसे उत्तर दिया—अब तो ऐसा ही होने दे क्योंकि हमे इसी रीति से धार्मिकता को पूरा करना उचित है। तव उसने उसकी बात मानली।

४. और यीशु बपतिस्मा लेकर तुरंत पानी मे से ऊपर आया और देखो, उसके लिए आकाश खुल गया और उसने परमेश्वर की आत्मा को कबूतर की भाँति उतरते और अपने ऊपर आते देखा।

५ और देखो, यह आकाशवाणी हुई कि यह मेरा परम प्रिय पुत्र है, जिससे मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ। (मत्ति ३–२३–७)

तपश्चर्या

१. फिर यीशु पवित्रात्मा से भरा हुआ यरदन से लौटा और

आत्मा द्वारा प्रेरित होकर वन मे चला गया।

२. चालीस दिन तक शैतान उसकी परीक्षा करता रहा और उन दिनो में उसने कुछ नहीं खाया और जब वे दिन पूरे हो गये, तो उसे भूख लगी (लूका ४. १ २.)

३. तब परीक्षा करने वाले ने उसके पास आकर कहा—यदि तू परमात्मा का पुत्र है तो कह दे कि ये पत्थर रोटियाँ बन जायें।

४ पर उसने उत्तर दिया—लिखा है कि मनुष्य केवल रोटी से ही नहीं परन्तु परमात्मा के मुख से निकलने वाले प्रत्येक शब्द से जीवित रहेगा।

५. तब शैतान उसे पवित्र नगर मे ले गया और मन्दिर के कंगूरे पर खडा किया।

६. और उससे कहा—यदि तू परमात्मा का पुत्र है, तो अपने आपको नीचे गिरा दे—क्योंकि लिखा है कि वह तेरे विषय मे अपने देव दूतो को आज्ञा देगा और वे तुझे हाथो-हाथ उठा लेंगे, कहीं ऐसा न हो कि तेरे पांवो मे पत्थर से ठेस लगे।

७ यीशु ने उससे कहा—यह भी लिखा है कि तू अपने प्रभु ईश्वर की परीक्षा न कर।

८. फिर शैतान उसे एक बहुत बड़े पहाड़ पर ले गया और सारे जगत् के राज्य व वैभव दिखाकर

९. उसने उससे कहा कि यदि तू (मेरे चरणों में) गिरकर मुझे प्रणाम करेगा तो यह सब कुछ तुझे दे दूंगा।

१०. तब यीशु ने उससे कहा—दूर हो जा शैतान, क्योंकि लिखा है—कि तू अपने प्रभु परमेश्वर को प्रणाम कर और केवल उसी की उपासना कर।

११. तब शैतान उसके पास से चला गया और देखो, स्वर्ग-दूत आकर उसकी सेवा करने लगे। (मत्ती ४–३–११)

प्राथमिक शिष्य

१. उस समय से यीशु ने प्रचार करना और यह कहना प्रारंभ किया कि पश्चाताप करो, क्योंकि स्वर्ग का राज्य निकट आ गया है।

२ उसने गलील के समुद्र के किनारे घूमते हुए दो भाइयो अर्थात् शमौन को जो पतरस कहलाता है और उसके भाई अन्द्रियास को समुद्र मे जाल डालते देखा—क्योंकि वे मछुए थे।

३. और उनसे कहा—मेरे पीछे चले आओ तो मैं तुम्हें मनुष्यों को पकड़ने वाले बनाऊंगा।

४. वे तुरन्त जालो को छोड़कर उसके पीछे हो लिये।

५. फिर वहां से आगे बढ़कर उसने और दो भाइयों अर्थात् जब्दी के पुत्र याकूब और उसके भाई यूहन्ना को अपने

पिता जब्दी के साथ नाव पर अपने जालों को सुधारते देखा, और उन्हें भी बुलाया।

६. वे तुरन्त नाव और अपने पिता को छोड़कर उसके पीछे हो लिये।

७. और मनुष्यों की भारी भीड़ उसके पीछे होली।

(मत्ती ४–१७–२२–२५)

अध्याय ३

धन्याष्टक

१ वह उस भीड़ को देखकर पहाड पर चढ गया और जब वह वहाँ स्थिर हो गया तो उसके शिष्य उसके पास आये।

२. और वह अपना मुँह खोलकर उन्हें उपदेश देने लगा।

३. धन्य हैं वे, जो मन के दीन हैं, क्योंकि स्वर्ग का राज्य उन्हीं का है।

४ धन्य हैं वे जो शोक करते हैं, क्योंकि वे शान्ति पायेंगे।

५. धन्य हैं वे, जो नम्र हैं, क्योंकि वे पृथ्वी के अधिकारी होंगे।

६ धन्य हैं वे, जो सद्धर्म के भूखे-प्यासे है, क्योंकि वे तृप्त किये जायेंगे।

७. धन्य हैं वे जो दयावान् हैं, क्योंकि उन पर दया की जायगी।

८. धन्य हैं वे जिनके हृदय-शुद्ध हैं, क्योंकि वे ईश्वर का दर्शन पायेंगे।

९. धन्य हैं वे, जो शान्ति स्थापित कराने वाले हैं, क्योंकि वे ईश्वर के पुत्र कहलायेंगे।

१०. धन्य हैं वे; जिन्हें सद्धर्म पालन के लिये अत्याचार सहने पड़ते हैं, क्योंकि स्वर्ग का राज्य उन्हीं का है।

११. धन्य हो तुम, जब लोग मेरे कारण तुम्हारी निन्दा करें सतायें और झूठ बोलकर तुम्हारे विरोध मे सब प्रकार की बुरी बातें कहें।

१२ तब आनंदित और उल्लासित हो जाओ, क्योंकि तुम्हें स्वर्ग मे उत्तम फल मिलेगा, इसलिए कि तुमसे पहले के सदेष्टाओं को उन्होंने इसी तरह सताया था।

(मत्ती ५-१-१२)

१. अक्रोध

१. तुम सुन चुके हो कि पूर्वकाल के लोगो से कहा गया था कि हत्या न करना और जो कोई हत्या करेगा वह न्याय-सभा मे दण्ड के योग्य होगा।

२ किन्तु मैं तुमसें कहता हूँ कि जो कोई अपने भाई पर क्रोध करेगा वह न्याय-सभा मे दण्ड के योग्य होगा।

३. इसलिए यदि तू अपनी भेंट वेदी पर लाये और वहाँ तुझे

स्मरण हो आये कि अपने भाई का मैं कुछ अपराधी हूँ।

४. तो अपनी भेंट वेदी के सामने छोड दे और जाकर पहले अपने भाई से मेल-मिलाप कर, तब आकर अपनी भेंट चढा।

५ तू अपने विरोधी के साथ अदालत के रास्ते में जाते-जाते ही जल्दी से समझौता करले। (मत्ती ५-२१-२५)

२. पवित्रता

१. तुम सुन चुके हो कि प्राचीनकाल मे ऐसा कहा गया था कि व्यभिचार न करना।

२. परन्तु मैं तुमसे कहता हूँ कि जो किसी स्त्री पर कुदृष्टि डाले, वह मन मे उससे व्यभिचार कर चुका।

३ यदि तेरी दाहिनी आंख, तुझसे दोष कराये, तो उसे निकालकर बाहर फेंक दे, क्योकि तेरे लिए यही भला है कि तेरे अवयवो मे से एक का नाश हो जाय और तेरा सारा शरीर नरक मे न डाला जाय।

४. और यदि तेरा दाहिना हाथ तुझसे दोष कराये तो उसे काटकर फेंक दे, क्योकि तेरे लिए यही भला है कि तेरे अवयवो मे से एक नाश हो जाय, और तेरा सारा शरीर नरक मे न डाला जाय। (मित्ती ५-२७-३०)

३. सत्य

१. फिर तुम सुन चुके हो कि पूर्वकाल के लोगो से कहा गया

था कि झूठी शपथ न खाना, परन्तु प्रभु के लिए अपनी शपथ को पूरी करना।

२. परन्तु मैं तुमसे कहता हूं कि कभी शपथ न खाना।

३. अपितु तुम्हारी बात 'हाँ' या नहीं' में हो क्योंकि इससे अधिक जो होता है उसके मूल में बुराई होती है।

(मित्ती ५-३३-३४-३७)

४. अप्रतीकार

१. तुम सुन चुके हो कि आंख के बदले आंख और दांत के बदले दांत।

२. परन्तु मैं तुमसे कहता हूँ कि बुरे का प्रतिकार न करना। जो कोई तेरे दाहिने गाल पर थप्पड़ मारे, उसके सामने तुम अपना बायां गाल भी कर देना।

३. और यदि कोई तुझ पर नालिश करके तेरा कुरता लेना चाहे तो उसे अंगरखा भी ले लेने दे।

४. और जो कोई तुझे जबरन एक कोस ले जाय, तो उसके साथ दो कोस चला जा।

५. जो कोई तुझसे मांगे, उसे दे, और जो तुझसे उधार लेना चाहे उससे मुंह न मोड़।

५. नैष्टिक प्रेम

१. तुम सुन चुके हो कि प्राचीनकाल में ऐसा कहा गया था

कि अपने पड़ोसी से प्रेम रखना, और वैरी से वैर।

२ परन्तु मैं तुमसे कहता हूँ कि अपने वैरियो से प्रेम रखो, जो तुम्हें अभिशाप देते हैं उन्हें आशीर्वाद दो और जो तुमसे घृणा करते हैं उनके प्रति उपकार करो और जो तुम्हें धिक्कारते हैं और तुम्हे सताते हैं उनके लिए प्रार्थना करो।

३ जिससे कि तुम अपने परम पिता की संतान ठहरोगे, क्योंकि वह भलो और बुरो दोनों पर अपना सूर्य उदय करता है और न्यायी और अन्यायी दोनो पर समान रूप से पानी बरसाता है,

४. क्योकि यदि तुम अपने प्रेम रखने वालों से प्रेम रखोगे, तो इसमे तुम्हारी कौन-सी विशेषता रही ? क्या भठियारे भी ऐसा नहीं करते ?

५. और तुम यदि केवल अपने भाइयों को ही नमस्कार करो तो तुमने दूसरो से अधिक क्या किया ? क्या भठियारे भी ऐसा नहीं करते ?

६. इसलिये तुम पूर्ण बनो, जैसाकि तुम्हारा परमपिता पूर्ण है। (मत्ती ५-४३-४८)

अध्याय ५

१. दान

१. सावधान रहो। तुम मनुष्यो को दिखाने के लिए अपने

दान के काम न करो, नहीं तो अपने परम पिता से कुछ भी फल न पाओगे।

२ इसलिये जब तू दान करे तो अपने आगे तुरही न बजवा, जैसा ढोंगी धर्म-स्थलो मे और सड़को पर करते हैं, ताकि लोग उनकी बड़ाई करें। मैं तुमसे सच कहता हूँ कि वे अपना फल पा चुके।

३. परन्तु जब तू दान करे तो जो तेरा दाहिना हाथ करता है, उसे तेरा बायां हाथ न जानने पाये।

४ ताकि तेरा दान गुप्त रहे और तब तेरा पिता जो अन्तर्यामी है तुझे प्रतिफल देगा। (मत्ती ६-१-४)

२. प्रार्थना

१. और जब तू प्रार्थना करे तो ढोंगियो के समान न हो, क्यों कि लोगों को दिखाने के लिए धर्म स्थलों मे सड़कों की नुक्कडो पर खड़े होकर प्रार्थना करना उन्हें पसंद आता है। मैं तुमसे सच कहता हूँ कि वे अपना फल पा चुके।

२. परन्तु जब तू प्रार्थना करे तो अपनी कोठरी में जा और द्वार बद करके अपने एकान्तवासी पिता से प्रार्थना कर और तब तेरा अन्तर्यामी पिता तुझे प्रतिफल देगा।

३. प्रार्थना करते समय विधर्मियों की तरह बार बार पुन-रुक्तियां न करो क्योंकि वे समझते हैं कि उनके बहुत बोलने से उनकी सुनी जायगी।

४. तो तुम उनकी तरह न बनों, क्योंकि तुम्हारा पिता तुम्हारे मांगने से पूर्व ही जानता है कि तुम्हारी क्या क्या आवश्यकताएं है।

५. तो तुम इस रीति से प्रार्थना किया करो। हे हमारे पिता जो स्वर्ग मे है तेरा नाम पवित्र माना जाय।

६. तेरा राज्य आये, तेरी इच्छा जैसी स्वर्ग में पूरी होती है वैसी पृथ्वी पर भी हो।

७. हमारी दिन भर की रोटी आज हमे दे।

८. और जिस प्रकार हमने अपने अपराधियो को माफ किया है। वैसे ही तू भी हमारे अपराधो को माफ कर।

९. और हमे परीक्षा मे मत डाल। परन्तु बुराई से बचा क्योंकि राज्य सामर्थ्य और महिमा तेरे ही है। आमीन।

१०. इस लिए यदि तुम मनुष्यों के अपराध क्षमा करोगे, तो तुम्हारा परम पिता भी तुम्हे क्षमा करेगा।

११. पर यदि तुम मनुष्यो के अपराध क्षमा नहीं करोगे तो तुम्हारा परम पिता भी तुम्हारे अपराध क्षमा नहीं करेगा।

(मत्ती ६. ५-१५)

३. उपवास

१. और जब तुम उपवास करो तब ढोगियों की भांति तुम्हारे मुंह पर उदासी न छायी रहे, क्योंकि वे अपना मुंह बनाये

रहते हैं, ताकि लोग उपवासी जाने। मैं तुम से सच कहता हूँ कि वे अपना प्रतिफल पा चुके।

२ पर जब तू उपवास करे तो अपने सिर पर तैल मल और मुँह धो।

३ ता कि लोग नहीं, तेरा पिता, जो अन्तरयामी है तुझे जाने कि उपवास कर रहा है। इस दशा मे तेरा पिता जो अन्तरयामी है तुझे प्रतिफल देगा। (मत्ती ६–१६–१८)

४. अपरिग्रह

१ अपने लिए पृथ्वी पर धन इकट्ठा मत करो, जहाँ कीड़ा और मोरचा खाकर उसे नष्ट करते हैं, और जहां चोर सेंध लगाते और चुराते हैं।

२. परन्तु अपने लिये स्वर्ग में धन इकट्ठा करो, जहाँ न तो चोर ही सेंध लगाते या चुराते हैं।

३. क्योंकि जहा तेरा धन है, वहां तेरा चित भी लगा रहेगा।

४. शरीर का दीपक आँख है, इसलिए यदि तेरी आँख निर्मल हो तो तेरा सारा शरीर प्रकाशमय होगा।

५. परन्तु तेरी आँख दोष पूर्ण हो तो तेरा शरीर अन्धकारमय होगा। इस कारण वह प्रकाश जो तुझमें है, यदि अन्धकार हो तो वह अन्धकार कितना गहरा होगा ?

(मत्ती ६-१९–२३)

५. ईश्वर का आश्रय

१ कोई मनुष्य दो स्वामियो की सेवा नहीं कर सकता क्योंकि वह एक से वैर और दूसरे से प्रेम रखेगा, या एक से मिला रहेगा और दूसरे को तुच्छ जानेगा। तुम ईश्वर और धन दोनो की सेवा नहीं कर सकते।

२ इसलिये मे तुम से कहता हूँ कि अपने जीवन की यह चिन्ता न करना कि हम क्या खायेंगे क्या पीयेंगे और न अपने शरीर के लिए ही यह चिंता करना कि क्या पहनोगे ? क्या जीवन भोजन से और शरीर वस्त्र से बढकर नहीं ?

३ आकाश मे पक्षियों को देखो ! वे न बोलते हैं न काटते हैं और न खत्तियो मे बटोरते है तो भी तुम्हारा परम पिता उन्हे खिलाता है। क्या तुम उनसे अधिक मूल्य नहीं रखते

४ तुममे कौन है, जो चिन्ता करके अपनी आयु की डोरी एक हाथ भी बढाने मे समर्थ है ?

५ और वस्त्र के लिये क्यों चिन्ता करते हो ? जंगली फूलों सोसनो पर ध्यान करो कि वे कैसे बढते हैं। वे न तो परिश्रम करते है और न कातते हैं।

६ तो भी मैं तुमसे कहता हूँ कि सुलेमान भी अपने सारे वैभव मे उनमे से किसी के समान वस्त्र पहने हुए न था।

७ इसलिए जब ईश्वर मैदान की घास को जो आज है और कल भाड़ मे झोंकी जायेगी ऐसा वस्त्र पहनता है तो अल्प

विश्व वासियों, तुमको वह क्यो कर न पहनायेगा ?

८. इसलिए तुम ऐसी चिन्ता न करो कि हम क्या खायेगें क्या पीयेंगे या क्या पहनेंगे ।

९ क्योकि तुम्हारा परम पिता जानता है कि तुम्हें ये सब वस्तुएँ चाहिये ।

१०. इसलिए पहले तुम उसके राज्य और उसके उपयुक्त धार्मिकता की खोज करो तो ये सब वस्तुएं भी तुम्हे मिल जायेगी ।

११ अत कल के लिए चिन्ता न करो, क्योकि कल का दिन अपनी चिन्ता आप कर लेगा आज ही का दु ख बहुत है ।

(मत्ती ६-२४-३४)

अध्याय ६

१ दुसरो के काजी मत बनो ।

१. किसी पर दोष मत लगाओ ताकि तम पर भी दोष न लगाया जाय ।

२. क्योंकि जिस तराजू से तुम तोलोगे वही तुम पर भी लागू होगी और जिस नापे से तुम नापते हो उसी से तुम भी नापे जावोगे ।

३. तू क्यों अपने भाई की आंख के तिनके को देखता है और अपनी आंख का लट्ठा तुझे नहीं सूझता ?

४ अथवा जब तेरी आँख मे लट्ठा है, तो तू अपने भाई से क्यो कर कह सकता है कि ला मैं तेरी आँख से तिनका निकाल दूँ। देख तेरी आँख मे तो लट्ठा है।

५. हे ढोगी! पहले अपनी आँख मे से लट्ठा निकाल ले तब तू अपने भाई की आँख का तिनका भलि-भांति देखकर निकाल सकेगा। (मत्ती ७–११–५)

२ मांगो तो दिया जायगा

१. मांगो तो तुम्हे दिया जायगा, ढूँढो तो तुम पाओगे खट-खटाओ तो तुम्हारे लिए खोला जायगा।

२. क्योकि जो कोई मांगता है उसे मिलता है, जो ढूँढता है वह पाता है और जो खटखटाता है उसके लिए खोला जायगा।

३. तुमसे से ऐसा कौन मनुष्य है कि यदि उसका पुत्र उससे रोटी मागे तो वह उसे पत्थर दे?

४. तो जब बुरे होकर अपने बच्चो को अच्छी वस्तुएं देना जानते हो, तो तुम्हारा परम पिता अपने मागने वालो को अच्छी वस्तुएँ क्यों न देगा?

५. इस कारण जो कुछ तुम चाहते हो कि मनुष्य जैसा तुम्हारे साथ करे तुम भी उनके साथ वैसा ही करो, क्योकि ईश्वरीय व्यवस्था और सन्देष्टाओ की शिक्षा यही है।

(मत्ती ७. ७–६–११–१२)

५. कर्मानुसार फल

१. इसलिए जो कोई मेरी ये बातें सुनकर उन्हें मानता है, वह उस बुद्धिमान् मनुष्य की तरह ठहरेगा, जिसने अपना घर चट्टान पर बनाया ।

२. और वर्षा हुई और बाढ़ आयी, आंधियां चलीं और उस घर पर थपेड़े लगे, परन्तु वह नहीं गिरा, क्योंकि उसकी नींव चट्टान पर डाली गयी थी ।

३. परन्तु जो कोई मेरी यह बात सुनता है और उस पर नहीं चलता, वह उस मूर्ख मनुष्य की तरह ठहरेगा, जिसने अपना घर बालू पर बनाया ।

४. और वर्षा हुई और बाढ़ आयी और आंधियां चलीं और उस घर पर थपेड़े लगे और वह घर ढह गया और ढ़हकर सत्यानाश हो गया ।

५. जब यीशु ये बातें कह चुका तो ऐसा हुआ कि भीड़ उसकी बातो से चकित हुई ।

६. क्योंकि वह उनके कर्म कांडी शास्त्रियों के समान नहीं परन्तु अधिकारी पुरुष की भाँति उन्हें उपदेश देता था ।

(मत्ती ७-२४-२९)

३. भक्ति-भोजन

१ और उन्होंने उससे कहा कि यूहन्ना के शिष्य तो बराबर

उपवास करते हैं और प्रार्थना किया करते हैं और वैसे ही फारसियो के भी परन्तु तेरे शिष्य तो खाते-पीते हैं।

२ यीशु ने उनसे कहा—क्या तुम बरातियो से, जब तक दूल्हा उनके साथ रहे उपवास करवा सकते हो।

३. परन्तु वे दिन आयेंगे, जिनमे दूल्हा उनसे अलग किया जायगा तब वे उन दिनो मे उपवास करेंगे।

(लूका ५-३३-३५)

४. पुण्यात्मा की निन्दा अक्षम्य

१ तब लोग एक अंधे-गूंगे को, जिसे भूत-पलीत ने ग्रस लिया था, उसके पास लाये और उसने उसे अच्छा किया और वह गूंगा और अधा, बोलने व देखने लगा।

२. इस पर सब लोग चकित होकर कहने लगे कि यह दाऊद की सतान तो नहीं है ?

३. परन्तु फारसियों ने यह सुनकर कहा—यह तो भूतो के सरदार इब्लीस बाल जबूल की सहायता से भूतो को निकालता है।

४. और यीशु ने उनके मन की बात जानकर उनसे कहा—

५. मनुष्य का सब प्रकार का पाप और निन्दा क्षमा की जायगी पर पवित्र आत्मा की निंदा क्षमा न की जायगी।

६. और जो कोई मनुष्य के पुत्र के विरोध में कोई बात कहेगा, उसका अपराध क्षमा किया जायगा, परन्तु जो कोई पवित्र आत्मा के विरोध मे कुछ कहेगा उसका अपराध न तो इहलोक में और न परलोक मे क्षमा किया जायगा।

७. भला मनुष्य मन के भले भण्डार से भली बातें निकालता है और बुरा मनुष्य बुरे भण्डार से बुरी बातें निकालता है।

८. और मैं तुमसे कहता हूँ कि जो-जो निकम्मी बातें मनुष्य कहेंगे न्याय के दिन हर एक बात का लेखा देंगे।

९. क्योंकि तू अपनी बातों के कारण निर्दोषी और अपनी बात ही के कारण दोषी ठहराया जायगा।

२. बारह शिष्य

१. और उन दिनों मे वह पहाड़ पर प्रार्थना करने निकला और ईश्वर से प्रार्थना करने मे सारी रात बितायी।

२. और जब दिन हुआ तो उसने अपने शिष्यों को बुलाकर उनमें से बारह चुन लिये और उनको प्रेषित कहा

(लूका ६-१२, १३)

३. इन बारह शिष्यों को यीशु ने आज्ञा देकर भेजा और कहा कि

(मत्ती १०-५)

ब्रह्मचर्य विषय

१० इस लोक की संतानों मे तो ब्याह-शादी होती है।

११. परन्तु जो लोग परलोक मे स्थान पाने तथा मृत लोगों में से जीवन पाने योग्य ठहरेंगे वे न तो स्वयं विवाह करेंगे, न कोई दूसरा उनका विवाह करेगा।

१२. वे फिर मरने को भी नहीं क्योंकि वे देव-दूतों के समान होंगे और पुनरुत्थान के सन्तान होने से ईश्वर की भी सन्तान होंगे।

५. यत्रवित्ततत्र चित्तम

१. और देखो, एक मनुष्य ने पास आकर उससे कहा है, श्रेष्ठ गुरु ! मैं कौन-सा भला काम करूँ कि जिससे मुझे अनन्त जीवन की प्राप्ति हो।

२. उसने उससे कहा—तू मुझे 'श्रेष्ठ' क्यों कहता है ? श्रेष्ठ तो केवल एक ही है और वह है ईश्वर। पर यदि तू जीवन मे प्रवेश करना चाहता है तो आज्ञाओं का पालन कर।

३. उसने उससे कहा—कौन-सी आज्ञाएँ ? यीशु ने कहा—यह कि हत्या व व्यभिचार न करना, चोरी न करना, झूठी गवाही न देना।

४ अपने पिता और अपनी माता का आदर करना और अपने पड़ोसी पर अपने समान प्रेम रखना।

५ उस युवक ने उससे कहा—इन सबका तो मैंने पालन किया है, अब मुझमे किस बात की कमी है ?

६ यीशु ने उससे कहा—यदि तू पूर्ण होना चाहता है तो जा

अपना माल बेचकर दरिद्रो को दे-दे और तुझे स्वर्ग में धन मिलेगा और आकर मेरे पीछे होले।

७ परन्तु वह युवक यह बात सुनकर उदास होकर चला गया, क्योंकि वह बहुत धनी था।

८ तब यीशु ने अपने शिष्यो से कहा—मैं तुमसे सच कहता हूँ कि धनवान का ईश्वरीय राज्य मे प्रवेश करना कठिन है।

९. फिर तुम से कहता हूँ कि सूई की नोक मे से ऊँट का निकल जाना सहज है, परन्तु ईश्वर के राज्य मे धनवान् का प्रवेश करना कठिन है।

१०. यह सुनकर शिष्यों ने बहुत चकित होकर कहा—फिर किसका उद्धार हो सकता है ?

११. यीशु ने उनकी ओर देखकर कहा—मनुष्यो से तो यह नहीं हो सकता परन्तु ईश्वर से सब कुछ हो सकता है।

(मत्ती १९-१६-२६)

अध्याय १४

१. पर उपदेश कुशल बहुतेरे

१ तब यीशु ने भीड़ से और अपने शिष्यो से कहा—

२ कर्मकांडी शास्त्री और फरीसीमूसा की गद्दी पर बैठे हैं।

३. इसलिए वे तुमसे जो कुछ कहें वह करना और मानना—परन्तु वे जैसा करते हैं वैसा तुम मत करना, क्योंकि वे जो कहते हैं सो करते नहीं हैं। (मत्ती २३-१-३)

५. उपदेश

१. भाइयो, हम तुम्हें समझाते हैं कि जो लोग उद्दण्ड है उन्हें समझाओ, कायरो को ढाढस दो, निर्बलो को सभालो और सभी मनुष्यो के प्रति सहनशीलता बरतो।

२ कोई किसी से बुराई के बदले बुराई न करे, इस विषय मे सचेत रहो और सदा भलाई करने पर तत्पर रहो। आपस मे भी और सभी मनेष्यों के प्रति भलाई करो।

३. सदा आनन्दित रहो।

४. निरन्तर प्रार्थना मे लगे रहो।

५. हर बात मे धन्यवाद दो, क्योंकि तुम्हारे लिए मसीह यीशु के मारफत व्यक्त हुई ईश्वर की यही इच्छा है।

६ आत्मा (की ज्योति) को न बुझाओ।

७ इसकी प्रेरणा से होने वाली वाणी को तुच्छ न समझो।

८ सब बातो को परखो। जो अच्छी है उसे पकड़े रहो।

९. सब प्रकार की बुराई से बचे रहो।

१०. शाति का ईश्वर स्वयं तुम्हे पूर्ण रूप से पवित्र करे और

भगवान से मेरी प्रार्थना है कि तुम्हारी आत्मा, प्राण, और शरीर हमारे यीशु मसीह के आने तक पूरे २ और निर्दोष बने रहें। (१ थिस्सलु० ५-१४-२३

४. दैवी सम्पत्ति नवरत्न

१. इसलिए मे यह कहता हूँ कि तुम आत्मा के अनुसार चलो जिससे कि तुम शारीरिक वासनाओ की पूर्ति न करो।

२. आत्मा का फल है, प्रेम, आनन्द, शांति, धीरज उदारता सौजन्य श्रद्धा।

३. नम्रता और सयम। ऐसा करने वालो पर शास्त्र का कोई बन्धन नहीं (गला० ५-१६-२२-२३)

५. परस्पर सहायता

१. भाईयों यदि कोई मनुष्य किसी अपराध में पकड़ा भी जाय तो तुम जो आध्यात्मिक वृति के लोग हो, नम्रना से ऐसे मनुष्य को सम्भालो और अपने लिए भी ऐसी सावधानी रखो कि कहीं तुम भी प्रलोभन मे न पड़ जाओ।

२. तुम एक दूसरे का भार उठाओं और इस प्रकार मसीह की व्यवस्था को पूरी करो।

३ क्योंकि यदि कोई कुछ न होने पर भी अपने आपको कुछ समझता है तो वह अपने आपको धोखा देता है।

४. धोखा न खाओ, ईश्वर की मखौल न उड़ाओ, क्योंकि मनुष्य जो बोयेगा सो काटेगा।

५ क्योंकि जो शारीरिक वासनाओ के लिए बोयेगा, उसे विनाश की फसल काटनी पडेगी और जो आत्मा के लिए बोयेगा, वह आत्मा के द्वारा अनन्त जीवन की फसल काटेगा।

६. हम भले काम करने मे ऊबे नहीं क्योंकि यदि हम ढीले न पड़े, तो ठीक समय पर फसल काटेंगे।

(गला० ६-१-३.७-६)

२ दिव्य-ज्ञानगूढ़

१. फिर भी जो पूर्ण नीतिमान लोग हैं, उनके आगे हम ज्ञान की बातें करते हैं, परन्तु (वह ज्ञान) इस संसार का और इस संसार के नाश होने वाले शासको का ज्ञान नहीं है।

२. हम ईश्वर का वह गुप्तज्ञान रहस्य के रूप मे बताते हैं, जिसे ईश्वर ने युगो पूर्व हमारी महिमा के लिए निर्धारित किया—

३. जिसे इस ससार के शासकों मे से किसी ने नहीं जाना, क्योंकि यदि जानते तो तेजोमय, प्रभु को क्रूस पर न चढ़ाते।

४ परन्तु जैसा लिखा है—"जो बातें आंख ने नहीं देखी और कान ने नहीं सुनी और जो मनुष्य के चित्त मे नहीं पैठी,

वे ही बातें हैं जो ईश्वर ने अपने प्रेम रखने वालों के लिए तैयार की हैं।"

५ ईश्वर ने अपनी आत्मा के द्वारा हम पर उन बातों को प्रकट किया, क्योंकि आत्मा सब बातों, वरन् ईश्वर की गूढ़ बातों का भी अनुसंधान करती है।

६. मनुष्यों मे से कौन किसी मनुष्य की बातें जानता है? केवल मनुष्य की आत्मा, जो उसमे है, वैसे ही ईश्वर की बातें भी कोई नहीं जानता। केवल ईश्वर की आत्मा जानत है। (१ कुरिय० १. ६-११)

३. ज्ञान से गर्व वृद्धि

१. हम समझते हैं कि सब को ज्ञान है। ज्ञान गर्व उत्पन्न करता है परन्तु प्रेम से उन्नति होती है।

२. यदि कोई माने कि मैं कुछ जानता हूं। तो जैसा जानना चाहिये, वैसे वह अब तक नहीं जानता।

३. परन्तु यदि कोई ईश्वर से प्रेम रखता है तो ईश्वर उसे पहचानता है।

४. सावधान लोगों का रक्षक ईश्वर

१. इसलिए जो समझता है कि मैं स्थिर हूं, वह सावधान रहे कि कहीं गिर न पड़े।

२. तुम किसी ऐसी परीक्षा में नही पड़े जो मनुष्य के सहने से

बाहर है और ईश्वर विश्वास पात्र है। वह तुम्हें तुम्हारी सामर्थ्य से बाहर परीक्षा मे न पडने देगा। वबलू परीक्षा के साथ उसमे से निकास भी करेगा, इसलिये कि तुम उसे सहने मे समर्थ हो सको। (१ कुरिथ० १०–१२–२३)

५ तुम ईश्वर के मन्दिर

१. क्या तुम नहीं जानते कि तुम ईश्वर का मन्दिर हो और ईश्वर की आत्मा तुम मे वास करती है।

२. यदि कोई ईश्वर के मन्दिर का नाश करेगा तो ईश्वर उसे नाश करेगा। क्योंकि ईश्वर का मन्दिर पवित्र है और वह मन्दिर तुम हो। (१ कुरिथ ३-१६-१७)

३. क्या तुम नहीं जानते कि तुम्हारी देह तुम्हारे भीतर निवास करने वाले और ईश्वर की ओर से प्राप्त पवित्र आत्मा का मदिर है ? और तुम अपने स्वामी नहीं हो।

४. क्योंकि तुम मूल्य देकर खरीदे गये हो, इसीलिए ईश्वरदत्त अपनी देह और आत्मा द्वार ईश्वर की महिमा करो।

(१ कुरिथ० ६.१६ २०)

२. न्याय प्रभु के हाथ

१ मेरी दृष्टि मे यह बहुत छोटी बात है कि तुम या मनुष्यों का कोई न्यायाधीश मेरा न्याय करे, मैं तो आप ही अपने आपको नहीं परखता।

२ मेरा मन मुझे किसी बात मे दोषी नहीं ठहराता, तथापि इससे मैं निर्दोष नहीं ठहराता, क्योंकि मेरा न्याय करने वाला वह प्रभु है।

३ तो जब तक प्रभु न आये, तब तक समय से पहले किसी बात का न्याय न करो वही तो अन्धकार मे छिपी बातें प्रकाश मे दिखायेगा और अन्त:करण के सकल्पों को भी प्रकट करेगा; उस समय ईश्वर की ओर से हर एक की प्रशंसा होगी। (कुरिथ ४-३-५)

३. मन का मान त्यागो

१ हम इस घड़ी तक भूखे-प्यासे और नगे हैं, थपेड़े खाते हैं और मारे-मारे फिरते हैं, हमारे रहने का कोई ठिकाना नहीं है।

२. और अपने ही हाथों काम करके परिश्रम करते है। भर्त्सना होने पर हम आशीष देते हैं, सताये जाने पर हम सहन कर लेते हैं।

३ बदनाम होने पर हम विनती करते हैं। हम आज तक जगत् के कूड़े और सब वस्तुओ की खुरचन की भाँति ठहरे हैं।

४. मांस-वर्जन

१ भोजन हमे ईश्वर के निकट नहीं पहुंचाता। यदि हम न खायें तो हमारी कुछ हानि नहीं और यदि खायें तो कुछ

लाभ नहीं।

२. इस कारण यदि भोजन मेरे भाई को ठोकर खिलाये तो मैं कभी किसी रीति से मांस न खाऊँगा ऐसा न हो कि मैं अपने भाई के पतन का कारण बनूँ।

(१ कुरिंथ० ८-८-१३)

४. मद्य-मांसादि का त्याग

१. क्योंकि हममे से न तो कोई अपने लिए जीता है और न कोई अपने लिये मरता है।

२. इसलिये हम उन बातो का प्रयत्न करें जिनसे शान्ति और एक-दूसरे का अभ्युदय हो।

३. भला तो यह है कि तू न मास खाये न शराब पिये और न कुछ ऐसा करे, जिससे तेरे भाई को ठोकर लगे उसका अध पतन हो अथवा वह दुर्बल हो।

(रोम० १४-७-१६, २२)

२. बलि से पाप-निवारण नहीं

१. यह असभव है कि बैलो और बकरों का खून पापों को दूर करे।

२ इसी कारण वह जगत् मे आते समय कहता है,

३. बलिदान और भेंट तथा होम-बलियो और पाप-बलियों

को तूने न चाहा, न उनसे तू प्रसन्न हुआ ।

(इब्रान १०-४-५-७)

३. शास्त्र-रहस्य

१. शास्त्र की आज्ञा का सारांश यह है कि शुद्ध-मन, सद्-विवेक और निष्कपट श्रद्धा से प्रेम उत्पन्न हो ।

(१ तिमोथी १.५)

४. सर्व हित के लिए प्रार्थना

१. अब मैं सबसे पहले यह उपदेश देता हूँ कि विनती, प्रार्थना निवेदन और धन्यवाद समस्त मनुष्यों के लिए किये जायें।

२. यह हमारे उद्धार कर्ता ईश्वर को अच्छा लगता और भाता भी है ।

३. वह यह चाहता है कि सब मनुष्यों का उद्धार हो और वे सत्य को अच्छी तरह पहचान ले ।

(१ तिमोथी २.१.३.४)

५. भक्ति सर्वथा श्रेष्ठ

१. देह की साधना से कम लाभ होता है, पर भक्ति सब बातों के लिए लाभदायक है क्योंकि वर्तमान और आगामी जीवन की भी प्रतिज्ञा इसी के लिए है (२ तिमोथी ४-८)

अध्याय ४३

१. ख्रिस्तमत मे शास्त्र का अध्ययन

१. ईश्वर ने हमे भय की नहीं, पर सामर्थ्य, प्रेम और संयम की भावना दी है।

२. जो खरी बातें तूने मुझसे सुनी है, उनको उस श्रद्धा और प्रेम के साथ जो तुझे मसीह यीशु मे है, अपना आदर्श बनाकर रख।

३. मैं कुकर्मी समझा जाकर दुख उठाता हूँ यहां तक कि कैद भी हूँ, परन्तु ईश्वर का शब्द कैद नहीं।

४ अपने आपको ईश्वर के ग्रहण योग्य और ऐसा काम करने वाला ठहराने का प्रयत्न कर जो लज्जित न होने पाये और जो सत्य शब्द् को ठीक तरह से काम मे लाता हो।

५. हर एक पवित्र शास्त्र ईश्वर की प्रेरणा से रचा गया है। और उपदेश दोष, दर्शन, सुधार और धर्म शिक्षा के लिए लाभदायक है।

६. ताकि ईश्वर का मनुष्य पूर्ण बने और हर भले काम के लिए तत्पर हो जाय।

(२ तिमोथी १-७-१३-२-६-१५-३-१६–१७)

२. धर्म पर चलो

१. मेरे प्रिय भाईयो ! हर एक मनुष्य सुनने के लिए तत्पर

बोलने मे मित भाषी और क्रोध में धीमा हो ।

२. क्योंकि मनुष्य का क्रोध ईश्वर के धर्म का निर्वाह नहीं कर सकता है ।

३. इसलिए सारी मलिनता और वैरभाव के आवेग को दूर कर उस शब्द को नम्रता पूर्वक ग्रहण करो जो हृदय मे बोया गया और जो तुम्हारे प्राणो का उद्धार कर सकता है ।

४. परन्तु उस वचन पर चलने वाले बनो और केवल सुनने वाले अपने आपको धोखा देते हैं । (याकूब १ १६,२२

४ वाक् संयम

१ यदि कोई अपने आपको धार्मिक समझे और अपनी जीभ पर लगाम न लगाये और अपने हृदय को धोखा दे तो उसकी धार्मिकता व्यर्थ है ।

२. इसलिए कि हम सब बहुत बार भूल कर जाते हैं जो कोई बोलने मे भूल नहीं करता, वहीं तो पूर्ण मनुष्य है और वह सारे शरीर पर अंकुश रख सकता है ।

३ जब हम अपने वश मे करने के लिए घोडो के मुँह मे लगाम लगाते हैं, तो हम उनकी सारी देह को घुमा सकते हैं ।

४. देखो जहाज भी यद्यपि ऐसे बड़े होते हैं, और प्रचड वायु से चलाया जाता है तो भी छोटी सी पतवार के द्वारा

माँझी की इच्छा के अनुसार घुमाये जाते हैं।

५. वैसे ही जीभ भी एक छोटी सी इन्द्रिय है और बड़ी २ डींगे मारती है देखो थोड़ी सी आग से कितने बड़े बन को आग लग जाती है।

६. जीभ भी एक आग है जीभ हमारे अवयवों मे अधर्म का एक लोक है। वह सारी देह पर कलक लगाती है भव चक्र मे आग लगा देती है और नरक कुंड़ की आग से जलती रहती रहती है।

७. क्योकि हर प्रकार के वन पशु पक्षी सर्प जैसे रेगनें वाले जन्तु और जलचर तो मनुष्य जाति के वश मे हो सकते हैं। और हो भी गये हैं।

८ पर जीभ को मनुष्यो मे से कोई वश मे नहीं कर सकता वह एक ऐसी बला है, जो कभी रुकती ही नहीं, वह प्राण नाशक विष से भरी हुई है।

९. जीभ से हम प्रभु और पिता की स्तुति करते हैं, और इसी जीभ से ईश्वर के रूप मे उत्पन्न हुए मनुष्यो को शाप देते हैं।

१० एक ही मुंह से धन्यवाद और शाप दोनो निकलते हैं, मेरे भाइयो, ऐसी बातें नहीं होनी चाहिए।

(याकूब १ २६.३.२-१०)

अध्याय ४५

१. समग्र धर्म

१. जो कोई शास्त्र की सारी आज्ञाओं का पालन करता है,

परन्तु एक ही बात में भूल करता है, तो वह सब बातो में दोषी ठहरता है।

२. इसलिए कि जिसने यह कहा कि तू व्यभिचार न करना, उसी ने यह भी कहा कि तू हत्या न करना; इसलिए यदि तूने व्यभिचार तो नहीं किया पर हत्या की तो भी तू शास्त्र की आज्ञा का उल्लंघन करने वाला ठहरा।
(याकूब २.१०–११)

२. श्रद्धा आचरणीय

१. मेरे भाइयों, यदि कोई कहे कि मुझे श्रद्धा है पर वह कर्म न करता हो तो उससे क्या लाभ ? क्या ऐसी श्रद्धा उसका उद्धार कर सकती है ?

२. शास्त्र-वचन गूढ

१. शास्त्र का कोई भी सदेश किसी को अपनी ही विचार धारा के आधार पर नहीं समझाया जा सकता।

२. क्योंकि कोई भी सदेश मनुष्य की इच्छा से कभी प्राप्त नहीं हुआ, किन्तु भक्तजन अपनी पवित्र आत्मा के द्वारा प्रेरित होकर ईश्वर की ओर से वह सदेश कहते हैं।
(पतरस १ २०–२१)

२. प्रायश्चित से उद्धार

१ यदि हम कहे कि हममे कुछ भी पाप नहीं तो हम अपने

श्राप को धोखा देते हैं। श्रौर हम में सत्य नहीं।

२. यदि हम श्रपने पापो को स्वीकार करें तो विश्वासपात्र श्रौर धर्म मूर्ति होने के कारण ईश्वर हमे क्षमा करेगा श्रौर हमारे सारे दोषो को धो देगा। (१ यूहन्ना १-८-९)

श्राज्ञाकारी ही भक्त

१. जो कोई यह कहता है कि मैं उसे जान गया हूँ श्रौर उसकी श्राज्ञाश्रो का पालन नही करता, वह झूठा हैं, श्रौर उसमे सत्य नहीं।

२ पर जो कोई उसके शब्द पर चले उसमे सचमुच ईश्वर का प्रेम पूर्वक हुश्रा हैं। हमे इसी से विश्वास होता है कि हम ईश्वर मे वास करते हैं।

३. जो कोई यह कहता है कि मैं ईश्वर मे वास करता हूँ उसे चाहिए कि वह स्वय भी वैसा ही श्राचरण करे जैसाकि वह करता था। (१ यूहन्ना २-४-६)

श्री श्री १०८ श्री अजितकीर्तिजी महाराज

(धर्म गुरु : आचार्य कल्प सम्भव सागरजी महाराज)

७. विश्व धर्म की अवधि

निश्चय नय से द्रव्य की दृष्टि से देखा जाय तो यह विश्व-धर्म अनादि निधन हैं। इसका कभी विनाश नहीं होता है। व्यवहार नय से पर्याय की दृष्टि से परिवर्तनशील है। यहाँ अवधि शब्द अहिंसा से है। विश्व का मूल धर्म अहिंसा इसलिए हैं कि यह जीव द्रव्य को हितकारी हैं। यह अहिंसा विश्व मे अनादिकाल से प्रचलित है और रहेगी। किन्तु सिद्धान्त के प्रमाण से सिद्ध है कि यह अहिंसा निश्चय नय से अनादि निधन होते हुए भी व्यवहार नय से भरतैरावत क्षेत्रो मे छः काल के परिवर्तन से सद्भाव-अभाव रूप मानी है। पहिले ३ काल तक द्रव्य हिंसा तो नहीं होगी भाव हिंसा मंद रूप मे होगी। चतुर्थ काल मे द्रव्य हिंसा, भाव हिंसा दोनों प्रचलित रहेगी किन्तु उस काल मे धर्म प्रवर्तक मोक्ष गामी जीवों का सद्भाव होने से अहिंसा धर्म का पूर्णतया प्रकाश होगा। पञ्चम काल मे द्रव्य हिंसा, भाव हिंसा दोनो तीव्र रहेगे किन्तु, तद्भव मोक्ष-गामी जीवो का अभाव होते हुए भी उस अहिंसा धर्म को पालने वाले महाव्रती—अणुव्रतियो का सद्भाव होने से अहिंसा धर्म का सद्भाव माना है। छठवा वें काल मे द्रव्य हिंसा, भाव हिंसा दोनों तीव्र से तीव्र होने से अहिंसावादी श्रावक–साधुओं का अभाव होने से विश्व-धर्म अहिंसा का अभाव माना है इसलिए भरतैरावत क्षेत्रो मे उत्सर्पिणी के पहिले काल तथा अवसर्पिणी छठमा काल मे अहिंसा धर्म का अभाव है। इस अवसर्पिणी पचमकाल का २॥ हजार वर्ष बीत गया है और १८॥ हजार वर्ष बाकी हैं। आगे छठमा काल आयेगा। भव्य जीवो को इन

१८।। हजार वर्ष की अवधि मे अहिंसा धर्म को अपनाकर अपना आत्म-हित कर लेना चाहिये।

८. विश्व धर्म से लाभ

आचार्य कहते हैं कि जहां वस्तु स्वभाव का ज्ञान हुआ वहीं धर्म का ज्ञान हुआ। जिस जीव को अपने स्वभाय का ज्ञान हुआ है, वही विश्व धर्म-अहिंसा से लाभ उठा सकता है। अनादि-कालीन विभाव परिणति ही जीव के लिये धर्म जानने मे बाधक है। प्रथम में इस भव्य जीव के अन्तरङ्ग मे द्रव्य हिंसा के भाव नष्ट हो चुकने से इसको दर्शन मोह के क्षय से सम्यक् आचरण हो जाता है। तदनतर क्रमेण भाव हिंसा = रागद्वेष के भाव से छूटकर यह आत्मा चारित्र मोह के क्षय से संयम आचरण को प्राप्त होते ही सर्वज्ञ परमात्म अवस्था को प्राप्त होता है। इस जीव को परमात्मा होने मे अहिंसा धर्म ही मूल कारण है। पहिले इस धर्म पर श्रद्धा रखते हुए जो जीव सुतर्क के द्वारा अहिंसा तत्व को जान लेता है, वही आत्म स्व रूप चारित्र को प्राप्त होता है।

एक फिलासिफर ने कहा है कि—

When wealth is lost nothing is lost When health is lost something is lost When charactor is lost Everything is lost

अर्थात्-यदि धन, नष्ट हुआ तो कुछ भी नष्ट नहीं हुआ, जब स्वास्थ्य यदि ठीक नहीं रहा तो कुछ नष्ट हुआ तात्पर्य यह

है कि खोयी हुयी सम्पत्ति, को यह मनुष्य पुरुषार्थ के द्वारा प्राप्त कर सकेगा, इसमे चिन्ता की बात नहीं है, किन्तु स्वास्थ्य खराब हुआ तो थोडी चिता होगी। कारण यह है कि धर्म साधना के लिये भी शरीर निरोग होना आवश्यक है। अपितु चारित्र हीन मनुष्य इह-पर मे भी सब कुछ खोवेगा कारण चारित्रवान् ही शुभ कर्म करने का अधिकारी है, शुभ कर्म करने वालों को ही पुण्यात्मा कहते हैं। वह पुण्यात्मा ही संसार मे उत्तम विभूति के तथा उत्तम शरीर के अधिकारो बनता है। अन्त मे उन पुण्योदय से प्राप्त सुख सामग्री (इन्द्रिय सम्बन्धी) को त्यागकर वास्तविक चारित्र को प्राप्त करता है। ईषट्ट रुप मे पालन करते हुए अन्त मे पूर्णतया अहिंसा धर्मी जब हो जाता है तभी उसे निश्चय चारित्रधारी वीतरागी सर्वज्ञ भगवान कहते हैं। मतलब यह है कि अहिंसा धर्म की प्राप्ति से हो यह जीव (दो) प्रकार से बचकर परमात्मत्व को प्राप्त होता है, यही लाभ है।

एक फिलासिफर कहते हैं कि—

Man is not a piece of dead matter with some energy acting mechanically as a switch system. He is a thinking being gifted with the power of discretion between good and bad moral and immoral, here and here after, so he approaches religion for guidance.

अर्थात्-मनुष्य एक उर्जावाला मृतक पदार्थ का टुकडा नहीं, जो स्विच की तरह यत्रवत् कार्य करें। वह तो एक विचार

शील प्राणी है। जिसमें भला-बुरा, नैतिक-अनैतिक, लौकि-लोकोत्तर, मे भेद करने की विवेक शक्ति है। धर्म उसे दिशा बोध देता है, इससे सिद्ध है कि मनुष्य मे परमात्मत्व की चरम सीमा को प्राप्त करने की जो योग्यता है। वह अन्य पर्याय में स्थित प्राणियों को नहीं। यह मनुष्य अपनी विवेक शक्ति से जब अहिंसा धर्म को अपनाता है, तब वह धर्म उसका मार्ग दर्शक बनता है। लेकिन महात्मा गाधी ने कहा है कि—

"No Sacrifice is worth the name unless it is a Joy Sacrifice and a long face go ill together He must be a poor speciman of humanity who is in need of syampathy for his Sacrific"

अर्थात् जिस त्याग में आनन्द नहीं है, वह त्याग, त्याग नाम को सार्थक नहीं करता है। त्याग और मुँह लटकाने की जोड़ी नहीं बैठती है। अपने त्याग की, जिसको लोगों की सहानुभूति की आवश्यकता हो वह सचमुच मानवता का एक क्षुद्र आदर्श है। मतलब यह है कि जब तक सच्ची त्याग-भावना नहीं है तब तक सच्चा चारित्र नहीं होगा। जब तक हमारे अन्दर आत्म कल्याण की तरफ उपयोग ही नहीं हुआ है तो धर्म मार्ग दर्शक कैसे बनेगा? यह तो असम्भव है।

जिसका भविष्य उज्जवल है उसी को त्याग धर्म के पालन में डर नहीं होता है। सामान्य जीव में उस धर्म के प्रति आस्था कम होने से वह त्याग करने मे डरता है। जो त्याग करता है वह नियम से कालान्तर मे सच्चा त्यागी बनकर ईश्वरत्व को प्राप्त होता है कि—

Contentment is the happiness and happiness is the heaven

जहां सही रूप से भजन है वहां संतुष्टि (तृप्ति आनद) नियम से मिलती है। जहां आनन्द व सन्तोष है, वहीं स्वर्ग है। मतलब जहां ईश्वर का भजन तथा सच्चा त्याग है, वहीं अहिंसा देखी जाती है। यदि त्याग से, ईश्वर की भक्ति से जिसे शान्ति, सुख न मिला तो वहाँ अहिंसा हुई, कारण उसके भाव मे कलुषता है, इसलिए उसे धर्म की प्राप्ति नहीं हुई।

रत्नाकर कवि 'कन्नड' कहते हैं कि—

ओदिद तत्त्वमिल्ल परिग्दिट्ट परिग्रहमिल्ल तग्गि तं
पाद कषायमिल्ल नेरेगेल्द परिषहमिल्ल सद्गुणा
मोदतेयिल्ल माडिदुरू धर्मविकासतेयिल्ल निम्मोल
गत्यादर भक्तियिल्ल सुखियागुवेनेन्तपराजितेश्वरा ॥२२॥

अर्थात् हे अपराजितेश्वर ! वस्तु स्वरूप को पढकर जाना नहीं, परिग्रह का त्याग किया नहीं, कषाय मद होते हुए, शान्त हुआ नहीं, परिषहो को जीता नहीं, अच्छे गुणों मे सतोष नहीं (प्रीति) अधिक रूप मे किया हुआ धर्म प्रभावना नहीं, आप मे आदर पूर्वक की हुयी विशेष भक्ति नहीं, फिर सुखी होऊंगा, वह बोले तो कैसे ? अर्थात् वह सुखी नहीं हो सकता।

एक फिलासिपर ने कहा है कि—

"The Contention of Jainism is it that the soul by

nature is pure It acquires Karma or matter by its action, thought and world This Karmic matter goes on accumulating from time to time in the Cycles of birth and death of living beings."

अर्थात् —जैन धर्म की मान्यता है कि स्वभाव से आत्मा शुद्ध है। अपने कार्य कलाप, विचार तथा वाणी से यह कर्मों मे बंध जाता हैं। पौद्गलिक कर्म प्राणियो के जन्म मरण के चक्र के साथ सचित होते हैं।

जैन धर्म मे मन, वचन, काय के योग से यह जीव का मणि वर्गणा सूक्ष्म पुद्गल परमाणुओ को ग्रहण कर कर्मबद्ध होता मे। तब तक उसे अहिंसा धर्म वास्तविक रूप में प्राप्त नहीं होता है। जब योग से निर्वृत्त होते हैं, तभी उसे पूर्णतया अहिंसा धर्म का लाभ होता है।

जब तक अटपट मे रहे, तब तक खटपट होई।
जब मन की अटपट मिटे झटपट दर्शन होई॥

अर्थात् जब तक यह ससार मे सकल्प-विकल्प चितन-मनन विद्यमान रहेगा, तब तक इस जीव को खटपट अर्थात् सुख-दु ख होगा। जब यह भाव मन को जीतकर अपने स्वरूप मे लीन रहेगा, तब इसको अहिंसा धर्म का पूर्णतया प्राप्ति से ईश्वरत्व मिलेगा। इसलिए हर दृष्टि से, हर मतो के प्रमाणों से सिद्ध है कि अहिंसा धर्म से इस जीव को महान् लाभ है।

६. विश्व धर्म स्थापना में संकीर्णताएँ

इस भारत भूमि पर तीर्थंकर महा पुरुष राम हनुमान, बाहुबली आदि महात्मा पुरुषो द्वारा अहिंसा धर्म की स्थापना हुई। इसके बाद हजरत ईसा तथा हजरत मुहम्मदादि अन्य मत संस्थापकों ने भी अपने ग्रन्थो मे अहिंसा धर्म को प्रधानता दी है। किन्तु काल दोष से उस अहिंसा धर्म मे आज सकीर्ण- ताएँ देखी जाती है। दिन २ हिंसा की प्रवृत्ति वढती जा रही है और अहिंसा की प्रवृत्ति कम होती जा रही है। और इस काल मे मतभेद की प्रवृति के कारण भी जनता मे अशाति निरन्तर वढ़ती जा रही है।

संकीर्णता क्या है ? इस विषय पर थोडा यहाँ लिखते है कि—हर धर्म कहता है कि 'हे जीव तू स्वतन्त्र वन स्वच्छन्द न वन। आज कल जैन बौध, शैव, वैष्णव ईसाई मुस्लिम कहाने वाले लोगों मे वहुत से वुरे कामों मे शास्त्र के विपरीत मांस खाना शराव पीना वेश्यादि सेवन करना और उन विषय सामग्री को जुटाने के लिए रात दिन परिश्रम करना ही धर्म समझ लिया है। और कहते हैं कि—

यावत् जीवेत् सुखं जीवेत्; ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत्।
भस्मी भूतस्य देहस्य पुनरागमनंकुतः ॥ १ ॥

अर्थात्—जव तक जीवे तव तक सुख से जीना चाहिये। ऋण करके घी पीना चाहिये भस्मी भूत शरीर का पुनर्जन्म कहाँ ? इस प्रकार अज्ञानी मूर्ख जीव शरीर सम्वन्धी सुख को

ही सुख मानकर बहिरात्मा हुआ है ऐसी मनुष्य के समान आत्म चर्चा करना अन्धे के आगे रोने के समान है कहा भी है

Throwing pearls before the swine अर्थात "अन्धे के आगे रोना अपने नैना खोना" मतलब मूर्खों के सामने जाकर तत्व की बात पूछना व्यर्थ है क्योंकि वह तत्त्व न जानने वाला होने से मूर्खता की बात ही करेगा उस समय पृच्छक भी ऐसी संगति से मूर्ख बनता है। अपने सुसमय एवं ज्ञान की बातो को भूल जाता है। और वह दुर्गुणी भी हो जाता है। कहते हे कि

दुर्भावना से हिंसा सद्भावना से अहिंसा।

बहुत से साधु सज्जन कहलाने वाले भी रूढ़िवाद को धर्म मानकर चलने से कषाय की प्रवृत्ति में ही उलझने वाले होने से उनकी भावना दुर्भावना कही जाती है। अन्तरग के शुभ परिणाम के द्वारा देव पूजादि जो क्रिया करता है उसकी सद्भावना कही जाती है। एक डाक्टर एक रोगी का ऑपरेशन करता है उसकी भावना जीव को बचाने की सद्भावना से अहिंसा हुई। एक धीवर सारे दिन जाल डालकर मछली पकड़ने की कोशिश करता है किन्तु उसे एक भी मछली नहीं मिली तो भी उसकी भावना मे मछली लेजाकर मारकर खाने की दुर्भावना से वह हिंसा का भागी हुआ।

आज हर मत मे सप्त व्यसनी पाये जाने लगे। धर्म ग्रंथों में वर्णों की व्यवस्था बतायी है। गीता मे १८वें अध्याय मे कहते हैं कि—

शमोदमस्तपः शौचं शान्तिरार्जवमेव च ।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभाजम् ।।४२।।

शौर्यंलेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् ।
दानमीश्वरभावश्चक्षात्रं कर्म स्वभावजम् ।।४३।।

कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्मस्वभावजम्
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ।।४४।।

अर्थात्—पूर्वकृत कर्मों के संस्कार रूप स्वभाव से उत्पन्न हुए गुणो के अनुसार विभक्त किये चारवर्ण उनमे अन्त करण का निग्रह इन्द्रियो का दमन, वाहर-भीतर की शुद्धि धर्म के लिए कष्ट सहन करना और क्षमाभाव एवं मन, इन्द्रियां और शरीर की सरलता, आस्तिक वुद्धि, शास्त्र विषयक ज्ञान और परमात्मा तत्व का अनुभव भी, ये तो ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म हैं ।

शूरवीरता, तेज, धैर्य चतुरता और युद्धमे भी न भागने का स्वभाव एवं दान और स्वामीभाव ।

अर्थात्—नि स्वार्थ भाव से सवका हित सोचकर शास्त्राज्ञानुसार शासन द्वारा प्रेम के सहित पुत्र तुल्य-प्रजा का पालन करने का भाव-ये सव क्षत्रिय के स्वाभाविक कर्म हैं ।

खेती गोपालन और क्रय विक्रय रुप सत्यव्यवहार में वैश्य के स्वाभाविक कर्म हैं । और सव वर्णो की सेवा करना यह शूद्र का भी स्वाभाविक कर्म है । आज इस कर्म भूमि मे वर्ण

व्यवस्था भंग होने से अधिकाश जनता के आचारों मे शिथिलता आ जाने से शूद्र का परिभाषा शोचनीय हुई है। आचार्य कहते हैं कि – जो पूर्व मे नीच बन्ध करके ऐसे नीच गोत्र वालों मे जन्म लेने वाला शूद्र है। और जो उच्च गोत्र ,वाले ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य जिस समय सप्त व्यसनी बनते हैं वे उस समय के लिए शूद्र है। परन्तु विश्व धर्म पालन करने एवं धारण करने के लिए चारो वर्ण वालो को समान अधिकार है अन्तर इतना है नीच गोत्र वाला शुद्र भी आचार-विचार द्वारा सद्‌गति प्राप्त कर सकता है। किंतु मोक्ष नहीं जा सकता। उच्च गोत्र वाला हो ईश्वरत्व को प्राप्त होता हैं। नीच गोत्र वाले उच्च गोत्र को प्राप्त कर ईश्वर बनते हैं। गीता के और त्रिलोकसार के आधार पर कहा जा सकता है कि तामसी प्रवृत्ति के कारण भूत मद्य, मासादि सेवन करने वाले जाति शंकरादि करने वाले उत्पन्न हुए उच्चगति से च्युत होकर नीच गति के पात्र बनेंगे और खोटे भाव से अशुचि अवस्था मे सूतक-पातक जिनको हुआ है ऐसे लोग तथा ५ महिने के बाद की स्त्री यदि उत्तम, मध्यम-जघन्य पात्र को आहार दान देवे तो, और भगवान के अभिषेक, प्रक्षालन ,पूजा करे तो और कुपात्र मे पात्र बुद्धि से दान दिये तो, कुभोग भूमि मे जन्म लेंगे। इसलिए बुद्धिमानों को सच्चे देव, शास्त्र गुरु का ज्ञान कर उसके अनुसार आचरण करना आवश्यक है।

क्योंकि आज हर मत मे भी शिथिलाचारी देखे जाते हैं। उनके निमित्त से भी विश्व धर्म स्थापना मे सकीर्णता आ गई है। साधु श्रावक दोनो मे जो शिथिलाचार है वही विश्व धर्म स्थापन में मूल बाधक कारण है। बुद्धिमानों को उन शिथिलाचारियों से बचते हुए अपने शुद्ध आमनाय की रक्षा करते हुए

और अपनें शक्ति को नहीं छिपाते हुये अहिंसा धर्म की स्थापना मे जो संकीर्णता है उसे दूर करना चाहिये यदि बूंद रूप मे भी हमारा प्रयत्न है तो कालान्तर में हम पूर्ण अहिंसा धर्म को प्राप्त कर सकते हैं आज धर्म कर्म से बाहर मनुष्य आधुनिक ढंग को ही अच्छा मानता है कहा भी है कि—

कोट पाट्लूनं चैव मुखं चिरूट तांबूलं ।
हैट बूट समायुक्तो जेंटलमेन स कथ्यते ॥१ ।

नेक्टाई कॉलरश्चैव मस्तके जुल्फिखे च।
अक्षीणि आयग्लासश्चजंटलमेन स उच्यते ॥२॥

हस्तौ परि वाचञ्च चर्मणा बध्यते करे ।
कस्यादिस्कन्ध चर्मेव जंटलमेन स कीर्तितः ॥३॥

पेट पूजा धनोपास्ति चायपान सिगरेटं च ।
सिनेमा बूट पालिशं च षट् कर्माणि दिने-दिने ॥४॥

हुक्का धुम्रपान च तम्बाखू चवम तथा ।
मुखे धारयमाणश्च जंटलमेन सईरितः ॥५॥

केषांतरे स्थित चर्म तैल लेपं शिरसोपरि ।
अंब्रेलास्टिक् करे युक्तः जंटलमेन स उच्यते ॥६॥

प्रीति भोजन भक्षो च वर्णाश्रम विघातक. ।
पुनर्विवाह कर्त्ता च जंटलमेन स ससवैस्मृत. ॥७॥

अर्थात्—कोट पेन्ट पहिने वाला, मुख मे पान और सिगरेट

पीने वाला टोप और बूटों को धारण करने वाला, जेंटलमेन कहलाता है। गर्दन मे टाई बाधे हुए सुन्दर कालर की बुसर्ट पहने शिर पर बड़ी २ जुल्फे रखे हुये, और आंखों मे सुन्दर ठंडा चश्मा लगाने वाला जेंटलमेन कहलाता हे। कलाई मे चमड़े की की घडी बान्धने वाला और चमड़े का पट्टा धारण करने वाला आज जेंटलमेन कहा जाता है। और भी कहा है। हुक्का पीना बीड़ी सिगरेट पीना और मुख मे पान बीडी चबाने वाला जेंटल मेन कहलाता है टोपी के भीतर चर्म और शिर पर तैल हाथ मे छाता और घड़ी वाला आज जेंटलमेन कहलाता है।

आज पेट पूजा धन पूजा चाय पीना सिगरेट पीना सिनेमा देखना और बूट पालिस ये ६ कर्म प्रतिदिन करते हैं ये सभी वेश भूषा खान पान, रहन सहनादि कुसस्कार विदेसियो की नकल है। विदेशी लोग भारतीय संस्कार से प्रभायित होकर कहते हैं कि—"Goldeu bird in India"

"भारत मे सोने की चिड़िया" अर्थात् वास्तविक उम शुद्धात्मा का साधक महात्मा पुरुष भारत मे ही हैं। अन्यत्र नहीं। सच्ची बात हो झूठी बात हो वह कभी न कभी प्रकाशित होती ही है। तीर्थंकर राम हनुमानादि महा पुरुषो का जन्म से मोक्ष तक का जीवन इसी भारत मे हुआ है। मुसलमान भी "सैराजु लन" बूत किताव मे कहते हैं कि—'बाबा आदम हिन्दुस्थान मे पैदा हुए" इसका मतलब वे भगवान आदिनाथ को आदम मानते हैं। यहां के रहने वाले वे किसी न किसी रूप मे उस ईश्वर को मानने वाले होकर पर देश मे जाकर या आये हुये परदेशी के सस्कार को देखकर, अपना कर अपने परम्परागत धार्मिक सस्कारो को छोड दिया है और जो परदेशी है, उन्होने भारतीय

संस्कारों को नहीं अपनाया है। हां कुछ परदेशीयों में यहां रहने के कारण थोडा परिवर्तन अवश्य आ जायेगा, किन्तु आज भौतिक विज्ञान से प्रभावित जनता विषयानुरागी होने से विश्व धर्म के स्थान मे सकीर्णता आगई है। अपितु पर देश के कुछ विद्वान लोगो ने भौतिक विज्ञान को धर्म श्रेष्ठ मानकर समर्थन किया है।

वास्तव मे विज्ञान शब्द ज्ञान से सम्बन्धित है। यह भी धर्म की तरह अनादि निधन शब्द हैं। जैसे की दौलतराम कृत छहढाला मे "तीन भुवन मे सार वीतराग विज्ञान" अर्थात् तीनो लोक मे सार वस्तु है तो एक वीतराग तिज्ञान है। यहाँ वीतराग शब्द का अर्थ अहिंसा धर्म से है। विज्ञान तो केवल ज्ञान से है। इसलिये यहाँ पारमार्थिक विज्ञान से ही वीतरागता सिद्ध हुई है। किन्तु आज जो विज्ञान मानते हैं, वह भौतिक दृष्टिकोण से है। क्योंकि आज के व्यक्ति हिंसा-अहिंसा की खोज न कर केवल भौतिक सुख सामग्री की खोज कर उसी में सुख मानने के कारण वह विज्ञान शब्द भौतिक रूप हुआ है। बुद्धि का विकास उपयोग के अनुसार हो होगा। आत्म-कल्याण की दृष्टि से जो विज्ञान है, वह तो वीतरागता के कारण बना। जो ऐहिक सुख की दृष्टि से विज्ञान हैं, यह तो (क्षणिक) इन्द्रिय सुख के कारण बना। प्राचीन लोग मांत्रिक शक्ति को भी विज्ञान शक्ति कहते थे और आज के लोग यान्त्रिक शक्ति को विज्ञान कहते हैं। इसलिए आज का भौतिक दृष्टि से जो विज्ञान और धर्म है, इन दोनो विषयो पर फिलासिफर कहते हैं कि—

Thera is a conflict between religion and science

greatest success in bringing together the various human races, having defferent Idealogies regarding social customs and political systems etc by wonderfull systems of communication namely air Journey, Radio, Telivision etc.

अर्थात् विज्ञान ने शोध के क्षेत्र में बहुत उन्नति की है। वह अधिकतम सुख के लिए प्रयत्नशील है। हवाई यात्रा, रेडियो, टेलिविजन आदि अद्भुत यातायात और संचार साधनों द्वारा विभिन्न सामाजिक तथा राजनीतिक विचार धाराओं वाली जातियों को एक सूत्र मे मिलाने मे विज्ञान ने सबसे अधिक सफलता प्राप्त की है।

Science has its base as intellect but not intuition human learning can not be restricted to physical Science alone Prof. Einstein, the celebrated Scientist, once remarked that there is something spiritual behind this physical nature of things. The spiritual domain stretches itself to life here after, The existence of the soul, which survives the body which is matter, soul Immortality and God are the subject matters of religion

अर्थात् विज्ञान की आधारशिला बुद्धि है सहज ज्ञान नहीं। मानव ज्ञान को भौतिक विज्ञान तक ही सीमित नहीं किया जा सकता। सुप्रसिद्ध विज्ञान वेत्ता आइन्स्टीन ने एक बार कहा था कि—भौतिक वस्तुओं के पीछे एक आध्यात्मिक शक्ति भी

है। यह आध्यात्मिकता आदि भौतिक जीवन तक फैली हुई है। इसका सम्बन्ध उस आत्मा से है, जो शरीर के नष्ट होने पर भी अपना अस्तित्व नहीं खोती है। आत्मा शाश्वत तथा ईश्वर मे धर्म की निर्णय सामग्री है। यहाँ आइन्स्टीन ने भी आत्म तत्व का समर्थन किया है और कहते हैं कि—

Religion depends upon Scriptures, authority of which goes directly to god who is believed to be omnisient, omnipotent, omnipresent and Almighty The vedas and the Agamas are based on the way shown by Tirthankaras who are considered to be Apaurusheya (Superhuman or divine)

अर्थात् धर्म आधारित है, उस आध्यात्मिकता पर जिसका सीधा सम्बन्ध ईश्वर से है, और वह ईश्वर है सर्वज्ञ, सर्व शक्तिमान तथा शाश्वत्। अत वेद तथा आगम का आधार है वह मार्ग जो तीर्थं करो ने प्रदर्शित किया है। जिन्हें अपौरुषेय (दिव्य-महा मानव) माना जाता है। आगे विज्ञान की असफलता बताते हैं।

Science has achieved any success in dealing with matters relating to birth, death and rebirth

अर्थात् जन्म, मृत्यु और पुनर्जन्म जैसी बातों में विज्ञान को कोई भी सफलता प्राप्त नहीं हुई है। आगे आत्मा के हितहित पर इस प्रकार कहते हैं कि—

It is given to the human beings either to conquer

the Karmic matter by good deeds, renunciation of worldly happiness and finally attain the complete liberation from the entire Karmic matter and attain god hood or Moksha or suffer indefinitely under the weight of Karmas

अर्थात् प्रत्येक प्राणी को पूर्ण अधिकार है कि अपने सद्-कार्यों से तथा सांसारिक सुख को तिलाञ्जलि देकर वह कर्मों को जीत ले तथा अन्त में कर्मों से पूर्णतः छूटकर मुक्त या ईश्वर बन जाय अथवा कर्मों के भार से अनुन्त दुःख सहता रहे। यहाँ फिलासिफर के कथन से भी यह सिद्ध होता है कि इस भौतिक विज्ञान से आत्मा का कल्याण नहीं होता है। जब इस भौतिक विज्ञान से विरक्त होकर वीतराग विज्ञान अर्थात् अहिंसा धर्म से युक्त जो सम्यक् ज्ञान है उसे प्राप्त कर लेता है, तब उस जीवात्मा को ईश्वरीय शक्ति प्राप्त होती है। आज उस विज्ञान शब्द को भौतिक रूप मे मानने से ही विश्व धर्म स्थापन में संकीर्णता आ गई है।

१०. विश्व धर्म का महत्व

इस विश्व के प्राणी मात्र को देखकर एक फिलासिफर ने कहा—

Wonder, more wonder, most wonder, not after wonder

इस संसार में एक से बढ़कर एक आश्चर्य देखे जाते हैं।

किन्तु इससे बढकर कोई आश्चर्य नहीं है। वह आश्चर्य क्या है ? धर्मराज यक्ष के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं कि—

अहन्यहीन भूतानि गच्छन्ति यम मन्दिरम् ।
शेषा जीवितु मिच्छन्ति किमाश्चर्यं मतः परम् ।।

अर्थात हर समय मे अनंत जीव यम मदिर को मतलब मरण को प्राप्त हो रहा है। किन्तु जो जीता हुआ जीव है वह मरण को देखकर भी विषयो से विरक्त नहीं होता है और यहीं ससार मे विषय भोगो से सुखी रहना चाहता हैं। कारण उस जीव को विश्व धर्म का महत्व समझ मे नहीं आया। बैरिष्टर चम्पतराय कहते हैं कि—

The man of to day is Anxious to take and retain, but not to give

अर्थात् आज कल मनुष्य धन को ग्रहण कर सचित करने के लिए व्यग्र रहता है, दान देने के लिए नहीं।

इस धन लोभी के विषय मे होने वाली हानि पर पूज्य-पाद स्वामी कहते है।

दुरर्ज्येन सुरक्षेण नश्वरेण धनादिना ।
स्वस्थः मन्योजनः कोपि ज्वरवानिवसर्पिषा ।।

अर्थात् बडी दुर्बलता से इस धन की उपार्जना करनी पडती है, और उसकी रक्षा भी करनी पडती है, फिर भी यह धनादि-नश्वर हैं। यह धन, जिस प्रकार ज्वर पीड़ित मनुष्य के लिये

घी, विष सदृश है, उसी प्रकार हानिकारक है। फिर भी यह मनुष्य भोगासक्ति से मूर्ख बनकर धन को प्राणो से भी अधिक प्यार करने लगता है। आचार्य कहते हैं कि—

पंडित मूरख दो जने भोगत भोग समान ।
पंडित समवृत्ति ममत बिन मूरख हर्ष अमान ।।

अर्थात् ज्ञानी और अज्ञानी दोनो भोग भोगेंगे। उस भोग को भोगते समय ज्ञानी हर्ष नहीं मानता, अज्ञानी ही हर्ष मानता है। उस अज्ञान के कारण ही मिथ्या दृष्टि कहते हैं। यद्यपि केवल ज्ञान की अपेक्षा सम्यग्दृष्टि भी अज्ञानी हैं, किन्तु ज्ञान से युक्त ससार शरीर भोगो से विरक्त होने के कारण ज्ञानी है। वह सम्यग्दृष्टि जीव ही विश्व धर्म की प्राप्ति करने मे समर्थ है। विश्व धर्म = अहिंसा की प्राप्ति से तीर्थंकर, भरत बाहुबलि राम हनुमानादि महापुरुष परमात्मा हुए। जिन्हे निश्चय नय से धर्म की प्राप्ति नहीं हुई है, वह सुभौम ब्रह्मदत्त, रावण आदि पुरुष दुर्गति को प्राप्त हुए हैं। गीता मे श्रीकृष्ण महाराज कहते हैं कि—

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्य विपश्चितः ।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः ।। (अ२-४२)

कामात्मनः स्वर्गपरा जन्म कर्म फलप्रदाम् ।
क्रियाविशेष बहुलां भोगैश्वर्य गति प्रति ।।४३।।

अर्थात् हे अर्जुन! जो सकामी पुरुष केवल फल श्रुति में प्रीति रखने वाले स्वर्ग को ही परम श्रेष्ठ मानने वाले, इससे

बढकर और कुछ नहीं है। ऐसे कहने वाले हैं वे अविवेकी जन जन्म रूप कर्म फल को देने वाली और भोग तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये बहुत क्रियाओ के विस्तार वाली, इस प्रकार की जिस दिखाऊ शोभा युक्त वाणी को कहते हैं उस वाणी द्वारा हरे हुए चित्तवाले तथा भोग और ऐश्वर्य मे आसक्ति वाले उन पुरुषो के अन्त करण मे निश्चयात्मक बुद्धि नहीं होती हैं। इस विषय पर गाधीजी कहते हैं कि—

All true art must help the soul to realise its inner self Anything which is a hindrance to the flight of the soul is a delusion and a snare

अर्थात सभी सच्ची कला को आत्मा के आंतरिक स्वभाव पहिचानने मे सहायता करनी चाहिये। आत्मा की उन्नति में जो कुछ भी बाधक है, वह सब माया है। मतलब—संगीत कला, नर्तन कला-बोलने की कला, धन कमाने की कला, चित्रकला, दान, पूजादि कला हैं यदि आत्मा के अन्तरङ्ग परिणाम की शुद्धि का कारण बनेगी तो वह कला वास्तव मे उपादेय है। यदि वह ससार के मोह-माया मे फँसाने वाली है तो हेय है। इससे यहाँ स्पष्ट है कि आत्मोन्नति के कारण भूत जो भी कला उन कलाओं से अहिंसा धर्म का महत्व समझ मे आता है और जहाँ महत्व समझ मे आया वहाँ परिणाम मे निर्मलता नियम से आती है। जिस समय जीव के शुभ कर्मोदय से उस अहिंसा धर्म का महत्व समझने का अवसर मिलेगा उसे नहीं खोना चाहिये क्योकि—

Strike the iron while it is hot

मतलव जिस समय लोहा गरम रहेगा, उसी समय पीटने से जैसा चाहे वैसा बनेगा। ठण्डा होने के बाद नहीं बनेगा उसी प्रकार विवेकी मनुष्यो को सुसमय प्राप्त होते ही अपने आत्मा का हित कर लेना चाहिए। अन्यथा व्यर्थ आयु गमायेंगे कहा भी है—

आयुष्य क्षण एकोऽपि न लभ्यः सुवर्ण कोटिभिः।
स चेन्निरर्थ को नीतः कानु हानिस्ततोऽधिकाः ॥

अर्थात् एक क्षण आयु भी करोड स्वर्ण देने पर भी नहीं मिल सकती ऐसी मनुष्यायु प्राप्त करके भी जिसने अपनी आत्मा का सुधार नहीं किया, व्यर्थ गमायेगा तो इससे बढकर और क्या हानि है ? इसका कारण संत कबीर ने एक दोहे मे कहा है कि—

"जब लग नाता जगत का तब लग भक्ति न होय।
नाता तोड़े हरि भजे भक्त कहावे सोय ॥"

मतलब, जब तक संसार का सम्बन्ध है, तब तक ईश्वर की सच्ची भक्ति नहीं हो सकती है। संसार का नाता, मूल जड विवाह है। इस विषय पर महात्मा गान्धी कहते हैं कि—

The dim of human life is moksha marriage is a hindrance in the attianment of this supreme object inasmuch as it only tightens the bonds of flesh

अर्थात् मनुष्य जीवन का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष है। इस महान लक्ष्य की प्राप्ति मे विवाह एक बाधा है। क्योकि वह

शारीरिक वन्धनों की और जकडता है। परमात्मा प्रकाश में भी कहते हैं कि—

यस्य हरिणाक्षि हृदये तस्य नैव ब्रह्मविचारय।
एकस्मिन् कथं समायातौ वत्स द्वौ
खड्गौप्रत्याकारे ॥१२१॥

अर्थ, जिस पुरुष के चित्त में मृग के समान नेत्र वाली स्त्री वस रही हो, उसके शुद्धात्मा के विचार नहीं होते हैं। जैसे एक म्यान मे दो तलवारें कैसे आ सकती हैं? कभी नहीं आ सकती। उसी प्रकार जो कामासक्त पुरुष हैं, वह कदापि ईश्वरीय सुख का अनुभव नही कर सकता है। क्योंकि एक साथ दोनो उपयोग नहीं हो सक्ते हैं। One thing at a time एक समय मे एक ही उपयोग होता है। जिस तरह हसो का निवास मानसरोवर है उसी तरह ब्रह्म का निवास स्थान ज्ञानियो का निमल चित्त है। जिसका चित्त निर्मल है, वही विश्व धर्म-अहिंसा के महत्व को समझने मे समर्थ है। अपितु विषयासक्त मनुष्य विश्व धर्म अहिंसा का महत्व नही समझ सकता है। इसलिए कल्याणेच्छु प्राणियो को हमेशा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चार पुरुषार्थों के द्वारा पूर्णतया विश्व धर्म अहिंसा को प्राप्त करना चाहिये। इतनी छोटी-सी इस किताव मे 'गागर मे सागर'' कहने के अनुसार जो भी तत्व की बात है, इन्हे सभी जीव ग्रहण कर स्व पर हित करेंगे इस प्रकार विश्वास करते हुए हम हमारी ये चार बातें समाप्त करते हैं।

-: मेरी भावना एवं आशय :-

Where is the will there is the way

अर्थात् जहाँ दिल है, वहाँ रास्ता है। मतलब जिस जीव के परिणामों मे जैसी भावना प्रकट होती है, वैसा ही उसे मार्ग मिलता है, उस मार्ग मे चलकर अपनी भावना के अनुसार फल पाता है। मेरी भावना है कि—

एकोऽहं शाश्वतश्चात्मा ज्ञान दर्शन लक्षणः।
शेषा वहिर्भवाभावाः सर्वे संयोग लक्षणः॥

अर्थात् मैं अकेला हूं। शाश्वत हूँ और ज्ञान दर्शन लक्षण वाला आत्मा हूँ, फिर मै संसार मे क्यो भ्रमण कर रहा हूँ? इसका कारण यह है कि मैं अनादि काल से अज्ञान भाव से युक्त होने से कर्म धारा के वशात् आस्रव-बन्ध करता आया हूँ। अब मै मेरे स्वरूप को आगम से समझा हूँ। यह मैं जानता हूँ कि आगम ज्ञान से आत्म गम्य नहीं हैं। किन्तु आगम ज्ञान आत्म ध्यान का साधक बनता है। आत्मा तो ध्यान है। हम आगम ज्ञान मे उलझे रहेंगे तो आत्म ध्यान नहीं होता हैं। आत्म ध्यान के लिये ध्यान के अभ्यास की जरूरत है। वह ध्यान सयम से सिद्ध होता है। वास्तविक रूप मे सयम सम्यग्-दृष्टि को ही होता है। मिथ्या दृष्टि को नहीं होता है। जिस समय जीव के सम्यक्त्वाचरण के साथ संयमाचरण होता है, उसी समय उसको केवल ज्ञान प्राप्त होता है। इस प्रकार कुन्द-कुन्द स्वामी ने चारित्र पाहुड़ मे भी कहा है—

जिणणाम दिट्ठु सुद्धं पढ़मं सम्मत्तं चरण चारित्तं ।
विदियं संजय चरणं जिणणाण सदेसियं तंपि ।।

मेरी आत्मा मे जब तक अज्ञान भाव रहेगा तब तक मुझे आस्रव बन्ध होगा। जब मे वीतराग भक्ति मे लीन हो जाऊँगा तब स्थूल मिथ्यात्व नहीं रहेगा किन्तु सूक्ष्म मिथ्यात्व रहेगा। वह भी चारित्र के वशात् आस्रव बन्ध के अभाव से कर्म धारा रुकने से ज्ञानधारा ही चलने से वहाँ शुद्धात्मा का अनुभव होने लगता है। मन्द कषायोंदय से महाव्रत होगा, किन्तु संयम और चारित्र तो सम्यक्त्व सहित महाव्रती को ही होगा। मिथ्यादृष्टि को (११ अग) को ज्ञान भी होगा नवग्रैवेयक मे भी जायगा किन्तु जब तक मिथ्यात्व रहेगा तब तक सम्यक्त्व एवं संयम नहीं होगा। (चारित्र संयम के अन्तर्गत हैं) इस लिये मैं उस सम्यक्त्व सहित संयम की प्राप्ति के लिये इस भव से ही अहर्निश जिन मार्ग मे प्रवृत्ति करुँगा साथ मे दूसरों को भी प्रेरणा दूँगा। इस संसार में निगोदिया पर विचार किया जाय तो निगोदिया के भाव कलंक हैं अनादि के मिथ्यात्व के कारण उसे ज्ञान प्रकट नहीं होता है। तो भी वहाँ अक्षर के अनंतवें भाग ज्ञान विद्यमान हैं। उस निगोदिया मे जो भव्य जीव हैं। उसके अन्तरङ्ग निमित्त के कारण क्षणिक उपादान की योग्यता प्राप्त होकर शनै २ ज्ञान गुण अंश को प्राप्त करते हुए वहां से निकलकर मनुष्य पर्याय धारण कर एक दिन सिद्ध भी बन सकते हैं और अभव्य जीव के तो क्षणिक उपादान की योग्यता भी नहीं होती। उपादान करण और निमित्त कारण दोनों का मेल होगा, वहा कार्य सिद्धि होती हैं। इसके (कारण) दो भेद हैं एक समर्थ कारण और एक असमर्थ कारण।

असमर्थ कारण कार्य का निमित्तक नहीं, किन्तु समर्थ कारण के होने पर अनन्तर समय मे कार्य की उत्पत्ति नियम से होती है। निमित्त कारण के दो भेद हैं एक उपादान निमित्त दूसरा वाह्य निमित्त। जो पदार्थ स्वयं कार्य रूप परिणमे उसको उपादान कारण कहते हैं। जैसे मृतिका। जो पदार्थ स्वय कार्य रूप न परिणमे किन्तु कार्य की उत्पत्ति मे सहायक हो उसको वाह्य निमित्त कारण कहते हैं। जैसे-कुमार, दण्ड, चक्रादि अनादि काल से द्रव्य मे जो पर्यायो का प्रवाह चला आ रहा है। उसमे पूर्व क्षणवर्ती पर्याय उपादान कारण है और अनंतर उत्तर क्षणवर्ती पर्याय कार्य है।

कार्माण स्कन्ध रूप पुद्गल द्रव्य मे आत्मा के साथ सबंध होने की शक्ति को द्रव्य वन्ध कहते हैं। और आत्मा के योग कषाय रूप भावो को भाववन्ध कहते हैं। वन्ध होने के पूर्व क्षण मे वन्ध होने के सन्मुख कार्माण स्कन्ध को द्रव्य बन्ध का उपादान कारण कहते हैं। आत्मा के योग कषाय रुप परिणाम ही द्रव्य वन्ध के निमित्त कारण है उदय तथा उदीरणा अवस्था को प्राप्त पूर्ण वद्ध कर्म भाव वन्ध का निमित्त कारण है। भाव वन्ध के विवक्षित समय से अनन्तर पूर्ण क्षणवर्ती योग कषाय रूप आत्मा की पर्याय विशेष को भाव वन्ध का उपादान कारण कहते हैं। द्रव्य वन्ध के निमित्त कारण अथवा भाव वन्ध के उपादान कारण को भावास्रव कहते हैं। द्रव्य वन्ध के उपादान कारण अथवा भाव वन्ध के निमित्त कारण को द्रव्यास्रव कहते हैं। यह जीव कषाय के अभाव मे योग मात्र से केवल साता वेदनीय रूप कर्म को ग्रहण करता है परन्तु योग आदि किसी कषाय विशेष से अनुरंजित हो तो अन्यान्य कर्म का भी बन्ध

करता है। बन्ध ४ प्रकार का होता है। (१) उसमें प्रकृति, प्रवेश ये दो बन्ध केवली सर्वज्ञ को भी होते हैं। (२) संसारियों को चारो बन्ध होते हैं। आस्रव मे शुभाशुभ रूप, सांपरायिक आस्रव ससारियों को होता है। किन्तु केवलियो को ईर्यापथ आस्रव होता है। (३) उदय भी संसारियो को रसोदय माना है। (४) और केवलियो को प्रदोषोदय अर्थात् उदय मे आकर खिर जाता है।

इस प्रकार मैं चारो अनुयोगो का प्रवचन करता हुआ दूसरे को भी आत्म हितार्थ प्रेरित करता हुआ स्वयं सत् मार्ग मे चलता हुआ अनादि से भूला हुआ, खोयी हुई उस रत्नत्रय निधि को प्राप्त करने के लिये सतत् रत्नत्रय का व्यापार करता रहता हूं। यही मेरी भावना एव आशय है।

❀ उपसंहार ❀

जैन धर्म के किसी भी ग्रन्थ को उठाकर पढ़िये। उसमें अहिंसा का वर्णन जिस विशदता के साथ किया गया है! वह द्रष्टव्य है। उसमे सूक्ष्म .से सूक्ष्म रूप की भी हिंसा वर्जनीय बताई है। और अहिंसा का सर्वांगीण प्ररूपण और उस पर चलने की प्रक्रिया भी अपूर्व है। यहां किसी को कटु अप्रिय वचन कहना तथा प्राणघात करना तो हिंसा बताई ही गई है। किन्तु इसके साथ ही मन द्वारा भी किसी का अशुभ सोचना भी हिंसा माना गया है।

जैन धर्म की अहिंसा को कुछ लोग कायरता कहते हैं, लेकिन यह बात वही कहते हैं जिन्होंने जैन धर्म मे वर्णित अहिंसा स्वरूप को समझने की कोशिश नहीं की है अन्यथा वे ऐसी बात नहीं करते। ये तो आप मानेंगे ही कि साधु और गृहस्थों की प्रक्रियाएँ अलग-अलग हैं। साधु जहां पूर्णतया संसार से विरक्त है, शरीर के ममत्व से भी रहित है। वे तो अहिंसा का सर्वांगीण पालन करते ही हैं। वे उत्तम क्षमा के धारी हैं, दूसरो द्वारा दी गई गालियो से भी वे जरा भी विचलित नहीं होते, खेद खिन्न या क्रोधित नहीं होते, एवं वे अपने शरीर को बांधने, मारने, यहां तक कि उनके शरीर को विदीर्ण करने वाले के प्रति भी हिंसा की, वैर की, बदला लेने की प्रक्रिया तो क्या, भावना भी नहीं रखते हैं। वे उनकी इस प्रकार की क्रिया को अज्ञान और भूल मानकर मन ही मन मुस्कराते हैं।

अपने कर्मों की निर्जरा होना मानते हैं और ऐसे लोगों को सन्मति प्राप्त करने की भावना रखते हैं, उन पर क्रोधित नहीं होते हैं। लेकिन गृहस्थ तो ससार मे वास करता है। उसे अपनी आजीविका करने हेतु व्यापार भी करना पड़ता है। अगर वह प्रशासक है तो उसे प्रशासन भी चलाना होता है। यदि वह सेनापति है तो उसे युद्ध सचालन भी करना पडता है। अपने राष्ट्र और राष्ट्रवासियो का सरक्षण भी करना पडता है। ऐसी स्थिति मे उसे कृषि व व्यापार भी करना पडता है, युद्ध भी करना पड़ता है, दण्ड भी देना पडता है, मगर इसमे उसकी दृष्टि बडी उदार व न्यायपूर्ण रहती है। वह किसी पर आक्रमण नहीं करता है, लेकिन अगर कोई उसपर या उसके राष्ट्र पर आक्रमण करता है तो वह अपने और राष्ट्र के सरक्षण की भावना से उस आक्रमण से बचाव करता है। ऐसी स्थिति मे यदि कुछ हिंसा भी होती है तो भी वह हिंसा का भागी नहीं है, बल्कि अहिंसक ही है। क्योंकि उसकी भावना किसी को मारने की नहीं। मात्र अत्याचारी से अपने देश, समाज या आश्रितों की रक्षा करने की है तथा अत्याचार को मिटाने की है।

कहा भी है कि—जहां अत्याचार करना पाप है, वहां अत्याचार को सहना भी पाप है। इसी तरह कृषि व उद्यम उद्यम करने मे भी जीवघात न हो, इसका विचार रखता है। इसीलिये जैन धर्म में इसी दृष्टि से आरंभी उद्यमी आदि क्रियाओं का त्यागी गृहस्थ को नहीं माना है। मात्र इरादा करके किसी प्राणी को सताना, मारना आदि संकल्पी हिंसा का त्यागी बताया गया है। किसी भी मत (सिद्धान्त) के लिये दो बातें प्रमुख बताई गई है।

(१) आचार मे अहिंसा और विचारो मे अनेकान्त। ये दो बातें जिसमे है। वही धर्म है, वही सर्वोदय है, और वही विश्व धर्म है। धर्म वही है, जो प्राणिमात्र (छोटे से छोटे को लेकर बड़े से बड़े तक) का संरक्षण दे, सुरक्षा दे, उसको किसी भी क्रिया मे किसी को पीडा न हो। सबको समान समझना हो, वर्ग भेद, व्यक्तिगत भेद न हो। सबको समानाधिकार है, सभी को उदयशील बनावे, वही सर्वोदयी विश्व धर्म है।

(२) जहां विचारो मे अनेकान्त है, वहीं सुख-शान्ति है। समन्वयता, विवादो के सघर्षों को मेटती है। एकान्त पक्ष विग्रह और विद्रोह को जन्म देता है। सभी की मान्यता किसी एक दृष्टि से सही हो सकती है, और होती भी है। लेकिन वही वस्तु दूसरे की मान्यता से दूसरे रूप मे भी हो सकती है, और होती भी है।

इसी दृष्टि से जैन धर्म समन्वयता और अनेकान्त सिद्धान्त को स्वीकार करता है। ताकि पदार्थ मे रहने वाले अनेक गुणों को सापेक्ष दृष्टि से अपनाया जा सके और पदार्थ का सम्पूर्ण रूप जाना जा सके।

जैन धर्म ने जहां अहिंसा को सर्वोच्चता दी है। वहा त्याग को भी सर्वोपरि महत्व दिया है। जहा त्याग है, वहीं शान्ति है। इसीलिये जैन साधु शुचि के लिये कमण्डल, अहिंसा और समय की रक्षा के लिये पिच्छी और ज्ञानाराधन के लिये शास्त्रों को छोडकर तिल तुष मात्र भी परिग्रह नहीं रखते और इसीलिए वे अपने हाथो से ही अपने बालों का केशलुंच करते हैं। नग्न दिगम्बर का यथा जात रूप धारण कर निर्द्वन्द्व

विचरण करते हैं। दिगम्बरत्व अपने आप में प्रकृति का रूप है। तभी तो प्रत्येक प्राणी, पहाड, आकाश, नदी, समुद्र वृक्ष सभी नग्न ही पैदा होते हैं और जीवन पर्यन्त नग्न ही रहकर जीवन यापन करते हैं। ससार मे भी यही मान्यता है, त्यागी को ही सर्वोच्चता मिलती है। सग्रही को नहीं। मन्दिरों और मठो मे भी त्यागियो की मूर्तिया स्थापित होती देखी गई हैं। इसीलिए विश्व के सभी धर्मों ने चाहे वे वैष्णव हो, शैव हो, बौद्ध हों, ईसाई हों, मुस्लिम हों, पारसी हों, यहूदी हो सभी ने अपने-अपने मजहबो मे नग्नता (दिगम्बरत्व) को महत्व दिया है। परम हस अवस्था को जहाँ पूर्ण दिगम्बरत्व है प्रतिष्ठा दी है। चूंकि वे स्वाभाविक पर्याय है। कपड़े-आदि को विकारी ही ग्रहण करते हैं अपने ऐबो को दबाने और छिपाने के लिये। लेकिन जो वे ऐब हैं, उसे वस्त्रों की आवश्यकता नही है। इसीलिए जैन साधु सर्वथा नग्न रहकर ही आत्म साधना मे रत रहते हैं।

अतः दिगम्बरत्व में ही पूर्ण अहिंसा धर्म (विश्व धर्म) का पालन होता है।

जयतु जिन शासनम्

सत्वेषु मैत्रीं गुरिणषु प्रमोदं,
क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा परत्वं ।
माध्यस्थ भावं विपरीत वृत्तौ,
सदा ममात्मा विदधातु देव ।।

भद्र शुभं मंगलम्

शुद्धि-पत्र

पृ० संख्या	पक्ति सं०	अशुद्ध शब्द	शुद्ध शब्द
७	१६	षावत्तग्रे	षावत्यग्रे
७	८	व	वह
१५	२०	पोहयति	मोहयति
१६	१०	हास्यरति	हास्य रति अरति
१८	१	विगतितम्	विगलितम्
२१	१७	त	न
२१	१८	वौधि	वोधि
२६	१५	दधात्	दध्यात्
२७	५	अष्टाटश	अष्टादश
३०	६	adove	above
"	१६	न भूप	वा न भूयः
३२	३	दयाभाय	दयाभाव
३३	२	aud	and
३६	१५	Relianef	Reliance
"	२०	पूर्व ती	पूर्व की
३७	"	हृदमे	हृदय
४१	११	मामग्री	सामग्री
४२	सूत्र के अन्त मे	—	(२ स्कंन्घ ७ अ. श्लोक १०
४८	११	अ. ४ श्लोक ४८	शिव.अ.४श्लोक४८

पृ० संख्या	पंक्ति सं०	अशुद्ध	शुद्ध
५६	२	Concequences	Concequences of
६०	६	taking again	afresh where was the before he created the world ? taking again
६०	६	cause effect	cause and effect
६०	१३	the	this
६०	१४	this	the
६४	५	वदमाम	बदनाम
७६	१६	सछहृति	सद्दहृति
८०	१५	फुछ	कुछ
८८	१६	मनुष्य का	मनुष्य का अंतिम परिणाम भुलोक है, कुटीचक्र सन्यासी का
६०	११	शिवोहिष्ट	शिवोद्दिष्ट
६४	७	becy	Lucy
६६	१५	आकिनचन	आकिंचन
११४	१६	भाग	भंग
११५	२	आस्ति	अस्ति
११६	६	श्रुत	श्रुतमम्
१२०	श्लोक २४ पंक्ति २	यशुरिव	पशुरिव
१२३	६	वठता	बैठता
१२३	१४	चेन्तन	चितन
१३४	६	शनुष्य	मनुष्य
१३६	४	प्रार्यना	प्रार्थना
१३८	५	पराक्षा	परोक्षा
१५४	७	चित्तम	चितम्

पृ० सख्या	पंक्ति सं०	अशुद्ध	शुद्ध
१५६	६	मनेष्यो	मनुष्यो
१७०	४	स्वभाय	स्वभाव
१७७	२	स्वभाजम्	स्वभावजम्
१७७	२	sacrific	sacrifice
१७८	५	ममय	समय
१७९	१४	चवम्	चवनम्
,,	१६	केषातरे	केपान्तरे
,,	१८	विद्यातक	विघातक
,,	१९	ससर्वस्मृत	सर्वस्मृत.
१८१	९	तिज्ञान	विज्ञान
१८२	६	ention	emotion
१८४	१८	has achieved	has not achieved

सं०	प० स०	अशुद्ध	शुद्ध
ाचरण	५	क्षयमुपगतावह्मा	क्षयमुपगता यस्य
	६	यस्यनमस्तस्मै	नमस्तस्मै
कथन	१	मुनिराज	मुनिराज के
७	१७	अति दूषण	अतिव्याप्ति दूषण
५	१५	उचित नही	उचित नही समझना
७	८	मतावलम्बी पक्षपात	मतावलम्बी मे पक्षपात
७	११	कबीर कहा	कबीर ने कहा
८	२२	zhee,in	ghee in
५२	१	६ महिने तक	६ महिने पहले से
	२	जन्म के ६ महिने तक	जन्म तक
४३	१३	विष्णु पासन	विष्णू पासन
४६	१	religions	religious
४९	१९	प्रदान करने वाले	प्रदान करने वाले हैं
५१	११	जैन मत के विना	यह वात
५२	१६	पर सच्ची श्रद्धा को	पर अभिरुचिनरखते
५९	१	sow shall	sow so shall
६०	अन्तिम	विना काय	विना कारण के कार्य
६३	९	यथा स्वरूप	यथार्त् स्वरूप
		कम शत्रुओ	कम शत्रुओ
६४	१७	तो खायेंगे	तो खोयेंगे
७०	६	मान कर करते है	मानकर नमस्कार करते है
७१	९	वह जीव किसी भी गति में	वह जीव मनुष्य गति में
७३	१	सम्यग दृष्टि	सम्यग दृष्टि
७६	१	क्षत्र	क्षेत्र
७८	१२-१३	Trausitory	Transitory
८१	८	उहोने	उन्होने
८३	१३	कला	कुल

६०	अन्तिम	शान्ति पाणी	शान्ति है पाणि
६१	१४	पहले ईस्वी पूर्व तीसरी	पहले तीसरी
	१८	शरह (शहर) ग्राम	शहर में
६६	१८	निन	निम्न
१०८	१	अपनी समझनी	अपने हित की बात समझनी
१०८	१८	विनय से	नियम से
११०	१३	लिन्न भयो ईट	लिख भयो जो
१११	१२	Ovespilt	Overspilt
१११	१८	befor	before
१११	१५	Ill got	Ill got
११३	६	उच्चाटन	उच्चारन
११६	२	दूसरे हाथ	दूसरे के हाथ
१३०	८	वपनिस्मा	वपतिस्मा
१४५	१८	अन्तांमी	अन्तर्यामी
१७१	१०	ईपट्ट रूप	बूंद रूप
१७२	अन्तिम	प्राप्त होना है क	प्राप्त होता है। कहते हैं कि
१७३	अन्तिम	is it that	is that
१७७	३	शोर्यंतेत्रो	शौर्यंतेजो
१८०	१०	धन पूजा चाय	धनोपार्जन चाय
१८०	१२	कुसस्कार	कुसंस्कार
१८०	१४	Goldeu	Golden
१८२	४	Scripturs	Scriptures
१८४	२१	हित हित	हिताहित
१८४	१८	स्वस्स	स्वस्थ.
१८७	१८	नाप्य दस्तीति	नान्य दस्तीति
१८६	१७	The dim	The aim
१६१	८	वहिर्मवामावा	वहिर्भवाभावा
१६२	१	दिट्ठ	दिट्ठि
१६३	४	परिषमे	परिणामें